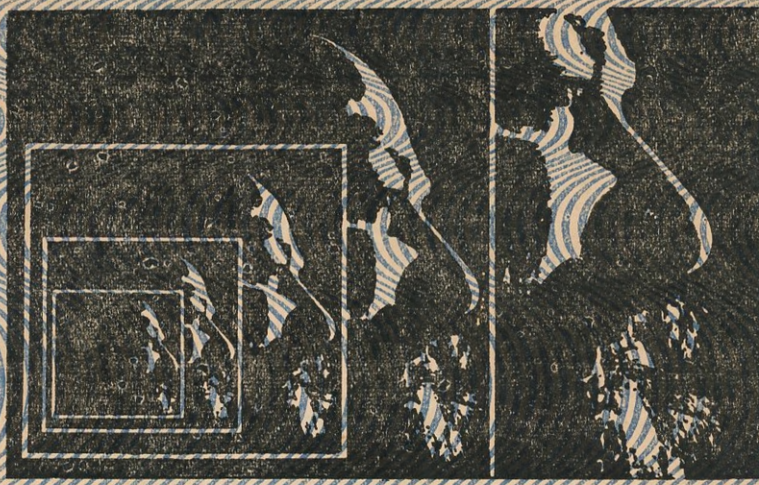

भगवान रजनीश की सृजनात्मक
युग क्रांति दर्शन की मासिक संकलन पत्रिका

युगवेद

अप्रैल १९७४

१	ताओ उपनिषद्	४०-००
२	गीता-दर्शन (अध्याय६)	३०-००
३	महावीर मेरी दृष्टि में	३०-००
४	महावीर वाणी भाग १	३०-००
५	महावीर वाणी भाग २	३०-००
६	जिन खोजा तिन पाइयां	२०-००
७	मैं मृत्यु सिखाता हूं	२०-००
८	इशावास्योपनिषद्	१५-००
९	निर्वाणोपनिषद्	१५-००
१०	गीता-दर्शन अध्याय: ७	१२-००
११	प्रेम है द्वार प्रभु का	९-००
१२	घाट भुलाना बाट बिनु	७-००
१३	नव-संन्यास क्या ?	७-००
१४	समुन्द समाना बुंद में	७-००
१५	सूली ऊपर सेज पिया की	७-००
१६	सत्य की पहली किरण	६-००
१७	मैं कहता आंखन देखी	६-००
१८	क्रांति बीज	६-००
१९	अन्तर्वीणा	६-००
२०	ढाई आखर प्रेम का	६-००
२१	प्रभु की पगडंडियां	६-००
२२	संभावनाओं की आहट	६-००
२३	संभोग से समाधि की ओर	६-००
२४	प्रेम के फूल	५-००
२५	अस्वीकृति में उठा हाथ (भारत-गांधी और मेरी चिंता)	५-००
२६	ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया	५-००
२७	साधना-पथ	५-००
२८	अन्तर्यात्रा	५-००
२९	सत्य की खोज	५-००
३०	मिट्टी के दिए	५-००
३१	मुल्ला नसरुद्दीन	५-००
३२	गहरे पानी पैठ	५-००
३३	काम-योग धर्म और गांधी	४-००
३४	समाजवाद से सावधान	४-००
३५	शून्य के पार	४-००
३६	पथ के प्रदीप	४-००
३७	शांति की खोज	३-५०
३८	मैं कौन हूं	३-००
३९	शून्य की नाव (सत्य का सागर शून्य की नाव)	३-००
४०	नए संकेत	२-००
४१	पथ की खोज (सिंहनाद का नया संस्करण)	२-००
४२	अज्ञात की ओर	२-००
४३	सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण	२-००
४४	क्रांति की वैज्ञानिक प्रक्रिया	१-५०
४५	ज्योतिष : अद्वैत का विज्ञान	१-५०
४६	ज्योतिष : अर्थात अध्यात्म	१-५०
४७	जनसंख्या विस्फोट : समस्या और समाधान	१-५०
४८	ध्यान एक वैज्ञानिक दृष्टि	१-५०
४९	प्रगतिशील कौन	१-५०
५०	प्रेम और विवाह	१-५०
५१	विद्रोह क्या है ?	१-५०
५२	मेडीसिन और मेडीटेशन	१-२५
५३	सारे फासले मिट गए	१-२५
५४	अमृत कण	१-००
५५	अहिंसा दर्शन	१-००
५६	अज्ञात के नए आयाम	१-००
५७	धर्म और राजनीति	१-००
५८	बिखरे फूल	१-००
५९	मन के पार	१-००
६०	युवक और यौन	१-००
६१	कुछ ज्योतिर्मय क्षण	१-००
६२	अवधिगत संन्यास	०-३०
६३	क्रांति की नई दिशा : नई बात (नारी और क्रांति)	०-३०
६४	क्रांति के बीच सबसे बड़ी दीवार (भारत के साधु-सन्त)	०-३५
६५	संस्कृति के निर्माण में सहयोग (जीवन जागृति केन्द्र : क्या, क्यों, कैसे ?)	०-३०

भगवान रजनीश की सृजनात्मक
युग क्रांति दर्शन की मासिक
संकलन पत्रिका

युगान्तर

वर्ष – ५ अंक – १९ : २०

मूल्य एक प्रति : १-०० रु.
„ वार्षिक : १२-०० रु.

अप्रैल १९७४

मानसेवी संपादक मंडल :

○ अरविन्दकुमार
○ डॉ. उर्मिला, पी-एच.डी.
○ 'आकुल' राजेन्द्र
(साधु आनन्द 'आकुल')
○ आलोक पाण्डे

□ स्वामी धर्म सरस्वती, व्यवस्थापक

युक्रान्द

अप्रैल

७४

★

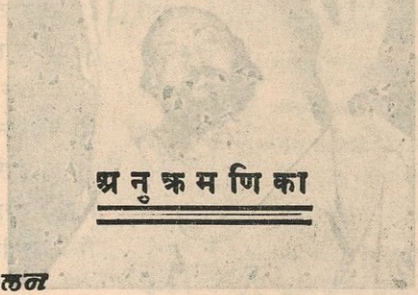

अनुक्रमणिका

प्रवचन : संकलन

: ५ : कृष्ण और गीता
(अध्याय ११, सातवां प्रवचन) संकलन : अरविन्दकुमार

: ३७ : महाभिनिष्क्रमण
साधु आनन्द ब्रह्मदत्त, बम्बई

गीत : काव्य

: ३ : अकुछ और सब कुछ
साधु चन्द्रकांत भारती, बड़ौदा

: ३६ : तुम्हीं हो प्यार के काबिल
स्वामी योग प्रीतम, भीलवाड़ा

: ४३ : हे जीवन के दिव्य स्थपति !
प्रा० भगवानदास जैन, अहमदाबाद

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्दकुमार, ७९०, राइट-टाउन, जबलपुर.
मुद्रण : अशोक प्रिन्टर्स, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर. ☎ 2957 P.P.

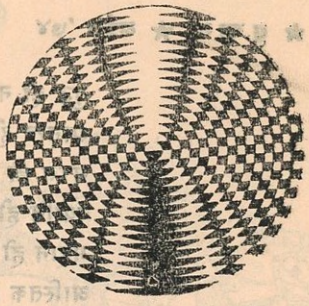

अकुछ औ र सब कुछ

●

एक मित्र मिल गये।

मेरे गले की माला में लगे हुए लाकेट को दिखाकर मुझसे पूछा :

क्या वो रजनीश है ?

मैंने कहा : हां, वो रजनीश ही नहीं, महासूर्य भी है।

क्या वो गुरु है ?

···हां, गुरु ही नहीं, गुरुदेव भी है।

क्या वो विद्वान है ?

···हां, विद्वान ही नहीं, ज्ञानी भी है।

क्या वो सन्त है ?

···हां, सन्त ही नहीं, महर्षि भी है।

क्या वो संन्यासी है ?

···हां, संन्यासी ही नहीं, सिद्ध भी है।

मित्र ने पूछा : हकीकत में वह क्या-क्या है ?

मैंने कहा : वह दर्शक ही नहीं, युगदृष्टा भी है।
आदरणीय ही नहीं, वंदनीय भी है।

बुद्ध ही नहीं, प्रबुद्ध भी है।
आनन्द ही नहीं, प्रेम भी है।
सरल ही नहीं, तरल भी है।
ज्योति ही नहीं, प्रकाश भी है।
महान ही नहीं, विराट भी है।
आस्तिक ही नहीं, अन्तर्यात्री भी है।
धार्मिक ही नहीं, धर्मधुरंधर भी है।
स्रोत ही नहीं, सागर भी है।
शंकर ही नहीं, गौरीशंकर भी है।
साहसिक ही नहीं, निर्भय भी है।
योगी ही नहीं, तांत्रिक भी है।
पुष्पोद्यान ही नहीं, सुगंधनिधि भी है।
गीतगोविन्द ही नहीं, श्रीकृष्ण भी है।
जीवनद्रष्टा ही नहीं, जीवन सर्जक भी है।
हृदयवान ही नहीं, करुणासागर भी है।
वास्तविक ही नहीं, तथाता भी है।
भगवान ही नहीं, शून्य-स्वरूप भी है।

थोड़े में; कहो तो कुछ भी नहीं, और मानो तो सब कुछ है।

□ साधु चन्द्रकान्त भारती
बड़ोदा (गुजरात)

कृष्ण और गीता

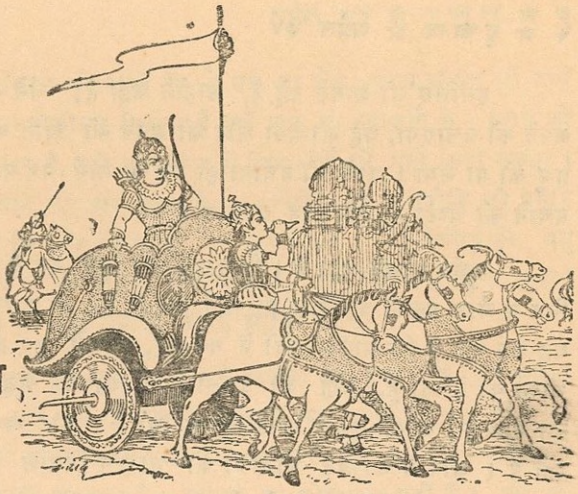

[गीता अध्याय ११ पर भगवान श्री रजनीश जी के ३ जनवरी ७३ से १४ जनवरी ७३ तक—क्रास मैदान, बंबई में १२ प्रवचन हुए हैं। उस क्रम का एक प्रवचन क्रमांक ७ वां, श्लोक ३२ से ३४ के अंश को प्रस्तुत किया गया है।

युक्तांद प्रकाशन का ऐसा प्रयत्न है कि प्रति माह गीता के ११ वें अध्याय का एक-एक प्रवचन दिया जाय, अतः प्रेमी सुविज्ञ साधकों से निवेदन है कि 'युक्तांद' के इन बहुमूल्य अंकों को आप संजो कर रखेंगे, तो वर्ष के अन्त में आपके हाथ में गीता अध्याय ११ पूरा का पूरा हो सकेगा। —सं०]

एक मित्र ने पूछा है, दिव्य दृष्टि को पाकर भी अर्जुन परमात्मा को उसकी समग्रता में स्वीकार करने में क्यों असफल हो रहा है, क्यों भयभीत है?

परमात्मा के साक्षात्कार में, उसकी पूर्ण स्वीकृति में, स्वयं को पूरा खोने की तैयारी चाहिए। परमात्मा का अनुभव अपनी पूर्ण मृत्यु का अनुभव है। जो मिटने को राजी है, वही उसे पूरी तरह स्वीकार कर पाता है। अगर मिटने में जरा-सा भी संकोच है तो अस्वीकार शुरू हो जाता है और भय भी। भय एक ही है कि कहीं मैं मिट न जाऊं। और यह भय अन्तिम बाधा है।

इसलिए जो जानते रहे हैं, उन्होंने कहा है; जैसे जीसस ने कि जो अपने को बचाएगा, वह खो देगा और जो अपने को खोने को तैयार है, वह प्रभु को पा लेगा। अपने को बचाना ही धर्म के मार्ग पर पाप है। अपने को बचाने की चेष्टा ही एक मात्र रुकावट है।

अर्जुन सामने खड़ा है। विराट के द्वार खुल गए हैं। लेकिन कहीं मैं मिट न जाऊं इसकी वह बात कर नहीं रहा है, यह भी समझ लेने जैसा है। वह कह रहा है कि आपके दांतों में दबे हुए, पिसते हुए द्रोण को देखता हूं, भीष्म को देखता हूं, कर्ण को देखता हूं। आपका मुंह मृत्यु, महाकाल बन गया है। आपके मुंह से लपटें निकल रही हैं। और विनाश की लीला हो रही है। और मैं बड़े-बड़े योद्धाओं को भी इस विनाश के मुंह की तरफ भागते हुए देखता हूं। जैसे पतंगे दीप-शिखा को तरफ भागते हों—अपनी ही मौत की तरफ। कहीं भी वह अपनी बात नहीं कह रहा है। लेकिन ध्यान रहे जब भी कोई दूसरा मरता है तो हमें अपने मरने की खबर मिलती है। और जब भी कहीं मृत्यु घटित होती है, तो किसी एक अर्थ में तत्काल हमें चोट भी लगती है कि मैं भी मरूंगा।

जब अर्जुन यह देख रहा होगा सबको मिटते हुए कृष्ण के मुंह में, तो यह असम्भव है कि यह छाया की तरह चारों तरफ यह बात उसको न घेर ली हो कि मैं भी मिटूंगा—मैं भी ऐसे ही मरूंगा, और मैं भी पतंगे की तरह किसी ज्योति में जलने को इसी तरह भागा जा रहा हूं; जैसे यह सारा लोक। मैं भी इस लोक से अलग नहीं हूं। वह कह तो दूसरों की बात रहा है, लेकिन उसमें खुद स्वयं की बात भी गहरे में सम्मिलित है। वह भय पकड़ता है।

बुद्ध अपने साधकों को कहते थे, इसके पहले कि तुम परम सत्य को जानने जाओ, तुम ऐसे हो जाओ जैसे मर गए हो—जीते जी मृत। अगर तुम जीते जी मृत नहीं हो गए हो, तो उस परम सत्य को तुम न झेल पाओगे। जो जीते जी मृत हो गया है, उसे फिर कोई भी भय नहीं है, फिर परमात्मा के सामने खड़े होकर मिटने की उसकी पहले से ही तैयारी है। यह तैयारी न हो तो अड़चन होगी।

और जो लोग भी परमात्मा की खोज में जाते हैं, वे जीवन की खोज में जाते हैं, मृत्यु की खोज में नहीं। जो जीवन के पिपासु हैं, अभी वे उसे न

पा सकेंगे। जो मिटने को राजी हैं, वे उसे पा लेंगे, परम जीवन भी उन्हें मिलेगा। लेकिन परम जीवन मिलता है पूर्ण मृत्यु की स्वीकृति से। अपने को मिटाने को जो तैयार है, उसे इस जगत में फिर कोई भी नहीं मिटा सकता। और अपने को बचाने को जो पागल है, वह मिटेगा ही। क्योंकि जो हमारे भीतर भयभीत है कि मिट न जाऊं, वह है अहंकार। वह मिटेगा ही, वह बनायी हुई चीज है। जो बनायी हुई चीज है, वह मिटनी ही है। हमारे भीतर जो मृत्यु से भी नहीं मिटती, वह है आत्मा।

और जब तक हमें मृत्यु का भय है, उसका अर्थ हुआ कि हमें आत्मा का कोई भी पता नहीं, हमें सिर्फ अपने अहंकार का, अस्मिता का, 'मैं-भाव' का पता है। हमारे भीतर मरण-धर्मा है—अहंकार और अमृत है—आत्मा। हम सब को अपने 'मैं' का पता है, आत्मा का कोई पता नहीं है। इस 'मैं' को ही हम लिये जाते हैं परमात्मा के द्वार पर भी। यह भीतर प्रवेश न कर सकेगा। इसे मिटना होगा। इसे बाहर दरवाजे पर ही छोड़ना होगा।

अर्जुन का भय भी उन सभी साधकों का भय है, जो आखिरी किनारे पर खड़े हो जाते हैं, और जहां सवाल उठता है कि क्या अब मैं अपने को खोने को राजी हूं। हम परमात्मा को भी पाना चाहते हैं—अपने में जोड़ने को। ध्यान रखना, वह भी हमारी सम्पत्ति होगी, वह भी हमारी मुट्ठी में हो, वह भी हमारे बैंक बैलेंस में हो। हमारा अहंकार, उसके होने से और प्रगाढ़ होता हो कि मैंने परमात्मा को पा लिया। इसलिए हम उसकी भी खोज करते हैं।

और धर्म बड़ी उल्टी व्यवस्था है। धर्म कहता है, जब तक तुम हो तब तक तुम उसे न पा सकोगे। कबीर ने कहा है, जब तक मैं था खोज-खोज कर, परेशान हो-हो कर मिट गया, उसे न पाया। और जब मैं मिट गया तो मैंने देखा कि वह सामने खड़ा हुआ है—वह दूर नहीं था। मैं था, इसलिए दूर था। मेरा होना ही एकमात्र अड़चन, बाधा, अवरोध है।

अर्जुन भी उसी अन्तिम, आखिरी...ज्ञानियों ने कहा है, अहंकार अन्तिम बाधा है, सब छूट जाता है। धन छोड़ना आसान है, परिवार छोड़ना आसान है, शरीर छोड़ना आसान है, अहंकार छोड़ना सबसे कठिन है कि 'मैं हूं'। और जब तक 'मैं हूं' तब तक 'मैं हूं' केन्द्र। और अगर परमात्मा भी

सामने खड़ा हो तो वह भी नम्बर दो है। जब तक मैं हूं तब तक वह नम्बर दो है, नम्बर एक तो मैं ही हूं। और जब तक परमात्मा को नम्बर एक पर रखने की तैयारी न हो तब तक बाधा रहेगी। जिस क्षण मैं कह सकता हूं कि अब तू ही है, अब मैं नहीं हूं तब बाधा गिर जायेगी।

जार्ज गुर्जियफ ने आदमी की साधना के चार चरण कहे हैं। उसने कहा है, पहली स्थिति तो आदमी की है—बहुत 'मैं' मल्टी आईस। आपके भीतर एक 'मैं' भी नहीं है बहुत 'मैं' हैं। आपको ख्याल भी नहीं होगा कि आप एक आदमी नहीं हैं। आपके भीतर कई ईगो, कई 'मैं' हैं। इसलिए सुबह कुछ, दोपहर कुछ, सांझ कुछ हो जाता है। सुबह एक बात का वचन देते हैं, दोपहर भूल जाते हैं। सांझ एक बात तय करते हैं, सुबह विस्मृत हो जाती है। आज तय किया था क्रोध नहीं करेंगे और क्रोध हो गया।

गुर्जियफ कहता है—जिस 'मैं' ने तय किया था कि क्रोध नहीं करूंगा, वह 'मैं' और है। और जिस 'मैं' ने क्रोध किया, वह 'मैं' और है। आपके भीतर भीड़ है, आपके भीतर एक 'मैं' नहीं है। इसलिए आपकी बात का कोई भरोसा नहीं है।

गुर्जियफ के पास कोई आता और वह कहता कि मैं आया हूं साधना करने, तो गुर्जियफ कहता कि तुम्हारी बात का भरोसा कर सकता हूं? तुम अभी साधना करने आए हो, सुबह, कल सुबह भी साधना करने के लिए तत्पर रहोगे? तुम्हें पक्का है कि तुमने तय किया था कि क्रोध नहीं करूंगा तो फिर नहीं ही किया? तब वह आदमी डगमगा जाएगा। वह कहेगा कि तय तो बहुत बार किया कि क्रोध न करूंगा, लेकिन हो नहीं पाता है।

एक बूढ़े आदमी ने मुझे एकांत में कहा, बड़े प्रतिष्ठित आदमी थे मुल्क के, मैं ब्रह्मचर्य का व्रत जीवन में चार बार ले चुका हूं। अब ब्रह्मचर्य का व्रत एक ही बार लिया जा सकता है। चार बार ब्रह्मचर्य के व्रत का क्या मतलब होता है। जो मेरे साथ सज्जन थे वे बहुत प्रभावित हुए। उनके ख्याल में ही न आया, उनकी बुद्धि में प्रवेश न हुआ कि चार बार ब्रह्मचर्य के व्रत का क्या मतलब होगा। मैंने उन बूढ़े सज्जन से पूछा कि फिर पांचवीं बार आपने क्यों नहीं लिया, तो उन्होंने कहा, मैं घर गया चार बार और फिर मैंने लेना ही छोड़ दिया—व्रत लेना छोड़ दिया।

आप व्रत लेते हैं, लेकिन आपका व्रत टिक नहीं सकता।

गुर्जियफ कहता है, आपके भीतर कई 'मैं' हैं। एक 'मैं' नहीं है आपके भीतर, मल्टी आईस, पालीसाइकिक। महावीर ने ठीक शब्द उपयोग किया है—बहुचित्तवान हैं। एक आदमी के भीतर बहुत से चित्त हैं। और महावीर के ये बहुचित्तवान की स्वीकृति अभी पश्चिम के मनोविज्ञान ने देनी शुरू की है। मनोविज्ञान भी कहता है—मल्टीसाइकिक, बहुत मन हैं आदमी के पास, एक मन नहीं है।

यह पहली अवस्था है—भीड़। इस आदमी का कोई भरोसा नहीं। इसका भरोसा करने का कोई सवाल नहीं है। इससे वचन भी लेने का कोई मतलब नहीं है। इसके वचन की कोई पूर्ति नहीं होने वाली है।

दूसरी अवस्था गुर्जियफ ने कही है—एक 'मैं'। यह सारी भीड़ को नष्ट करके जो व्यक्ति अपने भीतर एक स्वर पैदा कर लेता है, इसके वचन का अर्थ है, जो कुछ कहेगा वह पूरा करेगा—जो टिकेगा अपनी बात पर, अपने व्रत पर। उसके भीतर एक 'मैं' है। सुबह हो कि सांझ फर्क नहीं पड़ेगा। उसने प्रेम किया है तो प्रेम ही करेगा, फिर घृणा नहीं कर सकेगा। आपके प्रेम का भरोसा नहीं है। अभी प्रेम है, क्षण भर में घृणा हो जाए, फिर घृणा प्रेम हो जाय। अभी क्रोध है, फिर शांति हो जाय, फिर क्रोध हो जाय, अभी पछता रहे थे, और अभी फिर हत्या करने को राजी हो जाएं। आपकी बात का कोई भी भरोसा नहीं। आपको दोष देने का भी कोई कारण नहीं। आपके भीतर एक आदमी नहीं, कई आदमी हैं। जैसे एक मकान के कई मालिक हों। और किसी की बात का कोई भरोसा न हो। कैसे हो सकता है!

गुर्जियफ कहता है दूसरी स्थिति है एक 'मैं' की—यूनीटरी आई—एक स्वर रह जाय। साधना, आपकी भीड़ को काटती है और एक का निर्माण करती है। लेकिन वह दूसरी अवस्था है।

तीसरी अवस्था गुर्जियफ कहता है, 'न मैं की'—'नो आई'—जबकि 'मैं' न रह जाय। अनुभव होने लगे कि 'मैं नहीं हूं'—यह तीसरी अवस्था है। दूसरी अवस्था वाले आदमी को ही तीसरी मिल सकती है। जिसके पास पक्का है कि 'मैं हूं' वही हिम्मत कर सकता है 'मैं' की खोने की। जो आपके

पास नहीं है, उसको खोइएगा कैसे ? जो आपके पास है, उसे आप छोड़ सकते हैं। जो आपके पास है ही नहीं, उसको छोड़ियेगा कैसे ? आपके पास अभी 'मैं' भी नहीं है, अहंकार भी नहीं है पूरा, मजबूत एक, जिसका आप त्याग कर दें। और त्याग कौन करेगा ? एक त्याग करेगा, दूसरा पकड़े रहेगा। फिर आप क्या करिएगा ? आप एक भीड़ हैं !

गुर्जियफ कहता है, जिसको दूसरी अवस्था प्राप्त हो जाय एक 'मैं' की, वह फिर तीसरी अवस्था में भी छलांग लगा सकता है। वह कहता है, छोड़ता हूं इसे। तब वह 'न मैं'—'मैं नहीं हूं'—इस भाव को उपलब्ध होता है। गुर्जियफ कहता है, इस तीसरे के बाद चौथी अवस्था है, जब कि 'मैं नहीं हूं'—इसका भी पता नहीं चलता; क्योंकि इसका भी पता चलना थोड़े से 'मैं' का पता चलना है। 'मैं नहीं हूं' तो भी लगता तो है कि 'मैं हूं'। कौन कह रहा है कि मैं नहीं हूं ? किस को पता चल रहा है कि मैं नहीं हूं ? यह कौन है, जो बोलता है कि मैं नहीं हूं ? यह है। तो गुर्जियफ कहता है—चौथी अवस्था इसका भी विसर्जन है।

पहले एक भीड़ है 'मैं' की—एक क्राउड। फिर एक 'मैं' का जन्म है, फिर एक 'मैं' का त्याग है। 'न मैं' का जन्म है, फिर 'न मैं' का भी विसर्जन है। इस शून्य अवस्था में जो आदमी खड़ा होगा, वह परमात्मा को पूरा का पूरा स्वीकार करता है। इसके पहले परमात्मा को पूरा स्वीकार नहीं किया जा सकता। हम उसमें भी चुनाव करेंगे। हमें अभी डर है मिटने का। अभी मैं हूं, तो मुझे भय है। यही तकलीफ अर्जुन की है, यही तकलीफ सभी साधकों की है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि आपने समझाया कि परमात्मा के विराट स्वरूप को साक्षात्कार के लिए मनुष्य की इन्द्रियां सक्षम नहीं हैं। अपरिपक्व साधक यदि किसी प्रकार विराट स्वरूप की झलक पा ले, तो पागल भी हो सकता है। तो समझाएं कि परमात्म-ऊर्जा की झलक या साक्षात् तक पहुंचने के लिए साधक क्या तैयारी करे ?

मरने की तैयारी करे, मिटने की तैयारी करे, 'न होने' की तैयारी करे। 'नहीं हूं', ऐसा जीने लगे। कर सकते हैं। गहन से गहन साधना वही है। मगर हम तो सभी तरफ से 'मैं' को मजबूत करने की साधना करते हैं। अगर आप मन्दिर भी जा रहे हैं, तो आप देखते हैं कि लोग देख रहे हैं कि

नहीं कि मैं मन्दिर जा रहा हूं। मन्दिर में भी हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं, तो भगवान की तरफ ध्यान कम रहता है। ख्याल रहता है कि आसपास के लोग ठीक से देख रहे हैं—कोई फोटोग्राफर आया कि नहीं—कोई अखबार खबर छापेगा कि नहीं कि आज मैं प्रार्थना कर रहा था, लीन हो गया था। मन में लगा है कि कोई देख ले कि मैं प्रार्थना कर रहा हूं—कोई जान ले कि मैं प्रार्थना करने वाला हूं, कि मैं रोज मन्दिर जाता हूं, कि मैं धार्मिक हूं। धार्मिक होने की उतनी चिन्ता नहीं है, लोगों को पता हो कि मैं धार्मिक हूं—इसकी ज्यादा चिन्ता है। क्यों? वह मन्दिर से भी अहंकार ही भर रहा है। उससे भी मैं कुछ हूं। मैं पापी नहीं हूं, पुण्यात्मा हूं। अधार्मिक नहीं हूं, धार्मिक हूं। इनमें मजा है, मैं इकट्ठा कर रहा है।

आदमी उपवास करता है तो चुपचाप नहीं करता। करना चाहिए चुपचाप, क्योंकि किसी को बताने की क्या जरूरत कि आपने उपवास किया है। लेकिन ढोल-मंजीरा पीटकर खबर करनी पड़ती है कि उपवास पर हो गए हैं। फिर उपवास पूरा हो तो जुलूस निकालना पड़ता है कि उपवास पूरा हो गया है, कि दस दिन उपवास किया, कि अठारह दिन उपवास किया। उपवास का शोरगुल करने की क्या जरूरत है? यह तो आपकी निजी बात थी। आपके और परमात्मा के बीच इसकी खबर काफी थी। और उसको खबर मिल जाएगी, आपके बैंड बाजे की कोई भी जरूरत नहीं है।

कबीर ने कहा है—वह तुम्हारा परमात्मा क्या बहरा है, जो तुम इतना शोरगुल मचा रहे हो? लेकिन परमात्मा से किसी को प्रयोजन भी नहीं और उसका पक्का पता भी नहीं कि वह है भी या नहीं। और यह भी पक्का नहीं कि आपके उपवास से प्रसन्न हो रहा है कि दुखी हो रहा है, यह कुछ पता नहीं। आपके उपवास की उसको खबर भी हो रही, यह भी पता नहीं। लेकिन लोगों को तो कम से कम खबर हो जाय—वह जो अठारह दिन आदमी उपवास में तड़पता रहा है, ये लोग उसका जुलूस निकालें इसमें उसका रस है।

आदमी जरा-सा तप करे, साधना करे तो उत्सुकता होती है कि दूसरों को खबर जाय। हम छोटे बच्चों की तरह हैं। अनुभव से हमें सम्बन्ध नहीं है, खबर से सम्बन्ध है। और यह सारा हमारा जगत खबर से जी रहा है।

आप मानते हैं, फलां आदमी बहुत बड़ा महात्मा है। मानने का का कारण? क्योंकि वह आदमी ठीक से आपको खबर पहुंचा सका है। कोई छिपा हो, न हो उसका पता, तो आपको पता चलने वाला नहीं है। आपके सामने अगर कृष्ण भी आकर खड़े हो जाएं और पहले से ठीक से आपको खबर न की गई हो, तो आप पहचानने वाले नहीं हैं। या हो सकता है आप समझें कि कोई नाटक का पात्र आ गया है, ये क्या—कलगी, बांसुरी वगैरह लिए आदमी चला आ रहा है! या हो सकता है कि पुलिस को खबर करें कि यहां एक गड़बड़ आदमी दिखाई पड़ रहा है। इसको पकड़कर ले जाएं।

आप जीते ही हैं—शब्दों से, खबर से, प्रचार से। तो आदमी, धार्मिक आदमी भी अगर प्रचार करके ही जी रहा हो कि कितना रस मिल रहा है उसकी तपश्चर्या से; तपश्चर्या से नहीं, तपश्चर्या की खबर से—लोगों की आंखों में कितनी प्रशंसा मिल रही है, तो अहंकार ही भर रहा है। हम सब तरह से अपने अहंकार को भरते हैं। बुरे अहंकार भी हैं।

अगर आप जेलखाने में जाएं तो वहां भी जो बड़ा हत्यारा है, उसकी ज्यादा इज्जत होती है कैदियों में। जो दस-पांच दफा जेल में आ चुका है, उसकी ज्यादा प्रतिष्ठा होती है। वह नेता है। जो नया-नया आया है उसको लोग कहते हैं कि अभी सिक्खड़ है। क्या है? किया क्या था? वह कहता है, जेब काट ली। वह कहता है—चुप भी रह, इसका भी कोई मतलब है, कोई मूल्य है। अभी सीख।

मैंने सुना है कि एक जेलखाने में ऐसा हुआ—एक कोठरी में एक आदमी पहले से था। फिर दूसरा आदमी भी जेलखाने में आया और उसको भी उसी कोठरी में डाला गया। तो उस दूसरे आदमी ने पूछा कि कितने दिन की सजा हुई? उसने कहा चालीस साल की। उसने कहा, सिर्फ चालीस साल की! तो दरवाजे के किनारे अपना बिस्तर लगा, मुझे सत्तर साल की हुई है। तुझे पहले निकलना पड़ेगा, दरवाजे के पास ही अपना बिस्तर रख। सिर्फ चालीस साल की ही सजा हुई है, तो दरवाजे के पास ही टिक; तुझे पहले निकलने का मौका आएगा। उसको सत्तर साल की हुई है। सत्तर साल का मजा और है। वह भीतर जमकर बैठा है।

आदमी पाप में भी अहंकार को भरता है—छोटे-बड़े पापी होते हैं। आदमी पुण्य में भी अहंकार को भरता है—छोटे-बड़े पुण्यात्मा होते हैं।

अगर आप साधु-महात्माओं के पास जाएं तो भी इस पर निर्भर करता है कि वे आपसे कहेंगे आइए, बैठिए; या कहेंगे, कुछ भी न कहेंगे—इस पर निर्भर करता है कि आपकी कितनी प्रतिष्ठा उनकी आंखों में है। दान किया हो, उपवास किया हो, तप किया हो, इस पर निर्भर करेगा।

मैं एक महात्मा का प्रवचन सुन रहा था। मैं बहुत हैरान हुआ। वे कुछ कहते, दो वचन मुश्किल से बोलते फिर पूछते, सेठ कालीदास समझ में आया! बहुत लोग बैठे थे, कौन सेठ कालीदास है। सेठ कालीदास एक बिल्कुल बुद्धू की शक्ल के एक आदमी सामने बैठे हुए थे। वे सिर हिलाते कि जी महाराज। फिर वे पूछते सेठ माणिकलाल समझ में आया। फिर एक दूसरे सेठ वहीं सामने पगड़ी बांधे बैठे थे, वे भी सिर हिलाते समझ में आया। मैंने बाद में पूछा कि बात क्या है? क्या ये दो ही आदमी यहां समझने वाले हैं इतने लोगों में कोई। और ये नाम लेने की, पूछने की बात क्या है? तो पता चला कि दोनों ने काफी दान किया है। तो जिसने दान किया उसी के पास समझ भी हो सकती है। और फिर कालीदास को जो मजा आ रहा है कि महात्मा बार-बार पूछते हैं कालीदास समझ में आया। तो इतने लाखों लोगों में समझते हैं कि एक कालीदास समझदार है।

हमारा सारा ढंग अहंकार के आसपास चलता है—उसी के पास जीता है। तो अच्छे पापी, बुरे पापी। बुरे पापी वे हैं, जो बुराई से अहंकार को भर रहे हैं। अच्छे पापी वे हैं, जो अच्छाई से अहंकार को भर रहे हैं। अहंकार पाप है। धर्म की गहन दृष्टि में अहंकार पाप है। साधक का एक ही काम है कि वह ऐसे जिए जैसे है नहीं। क्या करें? जहां भी उसे लगे मेरा 'मैं' उठ रहा है, वहीं साक्षी हो जाय और उसे कोई सहयोग न दे। रास्ते से चले, उठे, बैठे, गुजरे ऐसे जैसे कि हवा आती हो, जाती हो। भीतर कहीं भी मौका न दे कि मैं निर्मित हो रहा हूं, मैं बन रहा हूं, मजबूत हो रहा हूं। इसकी सतत स्थिति बनी रहे जागरण की, तो ही एक घड़ी आती है कि जब 'मैं' मिट जाता है और साधक शून्य हो जाता है। उसी शून्य में अवतरण होता है।

उसी 'न कुछ' में सब जगह खाली हो जाती है, तो साधक अतिथिग्रह बन जाता है प्रभु के निवास का। फिर प्रभु उतर सकता है। प्रभु उतर आए फिर कोई ध्यान रखने की जरूरत नहीं है। फिर तो ध्यान रखना भी बाधा

है। फिर तो इसकी भी फिक्र करने की कोई जरूरत नहीं कि मैं हूं या नहीं हूं। वह उतर आया उसके बाद वह जाने। लेकिन जब तक वह नहीं उतरा है तब तक साधक को अत्यन्त सचेष्ट भाव से जीने की जरूरत है कि उसके भीतर कहीं भी 'मैं' मजबूत न होता हो। इसलिए यह एक बात ख्याल में रहे और आदमी अपने को सिफर करता जाय, शून्य करता जाय। एक घड़ी आ जाय कि भीतर कोई 'मैं' का भाव न उठता हो, उसी घड़ी में मिलन हो जाएगा—उसी क्षण आप नहीं और परमात्मा हो जाता है।

एक और मित्र ने पूछा है कि फूल खिलते हैं मौसम में, चांद ऊगता है समय से, पानी भाप बनता है सौ डिग्री पर। अगर सारा जगत प्रयोजन-हीन है, तो इतनी नियमितता कैसे? सारी क्रिया, गतिशीलता, अगर लीला ही, आनन्द ही है; तो इतनी प्रगाढ़ नियमबद्धता क्यों है?

ध्यान रहे, जहां खेल हो, वहां नियमों का बहुत ध्यान रखना पड़ता है। खेल टिकता ही नियम पर है, क्योंकि और तो टिकने की कोई जगह नहीं होती सिर्फ नियम ही होता है। दो आदमी ताश खेल रहे हैं। तो रूल्स होते हैं, नियम होते हैं जिनसे चलना पड़ता है; क्योंकि खेल में और तो कुछ है ही नहीं, सिर्फ नियम के आधार पर तो सारा मामला है। अगर दो ताश के खेलने वाले एक नियम को न मानते हों, खेल बन्द हो जाएगा। खेल टिकता ही नियम पर है।

इसलिए आप ख्याल रखें, अगर आप अपने काम-धंधे में बेईमानी करते हैं, तो कोई आपकी इतनी निन्दा नहीं करेगा, लेकिन अगर आप ताश खेलते वक्त बेईमानी करें और नियम का उल्लंघन करें, तो सभी आपकी निन्दा करेंगे। खेल में अगर कोई बेईमानी करे, तो बहुत निन्दित हो जाता है; क्योंकि वह तो खेल का आधार ही खींच रहा है। खेल का आधार ही नियम है। इस जगत में इतनी नियमबद्धता इसीलिए है कि यह परमात्मा का खेल है। और चूंकि उसी का खेल है, उसी को नियम पालने हैं। अपना खेल वह बन्द भी कर सकता है। अगर वह नियम नहीं मानता है तो खेल अभी बन्द हो जाता है।

मगर उसके अलावा कोई है भी नहीं अपने ही नियम हैं, अपना ही मानना है, इसलिए इतनी नियमबद्धता है। नियमबद्धता का कारण यह नहीं है कि जगत में कोई प्रयोजन है। जहां प्रयोजन हो वहां तो बिना नियम के

भी चल सकता है। क्योंकि प्रयोजन ही काम करवा लेगा, लेकिन जहां प्रयोजन ही न हो वहां तो नियम ही सब कुछ है। क्योंकि भविष्य तो कुछ भी नहीं है, आगे तो कुछ भी नहीं है पाने को; नियम ही एकमात्र आधार है।

छोटे बच्चे भी खेल खेलते हैं तो नियम बना लेते हैं। सारे खेल नियम पर खड़े होते हैं। नियम के बिना खेल असम्भव है। ये सारे खेल जो हम चारों तरफ देख रहे हैं, नियम पर खड़े हैं, इसलिए विज्ञान नियम की खोज कर पाता है। इसे थोड़ा समझ लें।

विज्ञान तो खड़ा ही नियम पर है। अगर जगत में नियम न हो तो विज्ञान बिल्कुल खड़ा नहीं हो सकता। विज्ञान नियम की खोज कर लेता है कि सौ डिग्री पर पानी भाप बनता है। यह नियम की खोज है। अगर कभी निन्यानबे पर बनता हो और कभी डेढ़ सौ पर बनता हो और कभी बनता ही न तो फिर विज्ञान खड़ा नहीं हो सकता।

विज्ञान ने नियम का तो पता लगा लिया है, लेकिन वैज्ञानिक से पूछें कि प्रयोजन क्या है, तो वैज्ञानिक कहता है, प्रयोजन का तो पता नहीं चलता। इसलिए विज्ञान कहता है प्रयोजन का हमें कोई भी पता नहीं है। हम इतना ही बता सकते हैं कि ऐसा है। क्यों है ? किसलिए है ? इसका कोई उत्तर नहीं। हमसे यह मत पूछो। हमसे व्हाई—क्यों—मत पूछो। हमसे सिर्फ व्हाट—क्या है—इतना ही पूछो। हम बता सकते हैं सौ डिग्री पर पानी गर्म होता है। लेकिन क्यों सौ डिग्री पर गरम होता है ? निन्यानबे पर होने में क्या अड़चन है ? और निन्यानबे पर होता तो दुनिया में कौन-सी खराबी हो जाती ? या एक सौ एक डिग्री पर होता तो दुनिया में कौन-सी विकृति आने वाली है ? और सौ डिग्री पर ही होता है, इसका क्या लक्ष्य है ? यह भी विज्ञान कहता है, हम कुछ नहीं कह सकते। कोई लक्ष्य नहीं दिखाई पड़ता। कोई प्रयोजन नहीं दिखाई पड़ता। एक नियम वर्तुलता दिखाई पड़ती है कि नियम आवर्तित होता रहता है।

धर्म कहता है, कोई प्रयोजन नहीं है। हमें बहुत घबड़ाहट लगती है इस बात से कि कोई प्रयोजन नहीं है; क्योंकि तब सब बातें फिजूल मालूम पड़ती हैं। अगर कोई प्रयोजन नहीं तो सब बात फिजूल मालूम पड़ती है।

लेकिन आप समझें थोड़ा। आपको फिजूल इसीलिए मालूम पड़ती है कि आप अब तक प्रयोजन से ही जीते रहे हैं। प्रयोजन के कारण ही, प्रयोजन की धारणा के कारण ही फिजूल मालूम पड़ती है। अगर कोई प्रयोजन है ही नहीं तो कोई चीज फिजूल भी नहीं है। प्रयोजन हो तो कोई चीज फिजूल हो सकती है। प्रयोजन हो ही न जगत में तो फिर कोई चीज यूजलेस नहीं है—कोई चीज फिजूल नहीं है; क्योंकि फिजूल को जांचिएगा कैसे ?

अगर सभी प्रयोजन रहित है तो फिर कोई चीज व्यर्थ नहीं है। न कोई चीज सार्थक है, न कोई चीज व्यर्थ है। बस चीजें हैं। ऐसा जो स्वीकार कर लेता है, उसके जीवन से अशांति के सारे कारण विदा हो जाते हैं। ऐसा जो मान लेता है, समझ लेता है, गहरे में इसकी प्रतीति हो जाय—उसके जीवन में कोई बेचैनी नहीं रह जाती। कोई बेचैनी नहीं रह जाती, बेचैनी का उपाय ही नहीं रह जाता। **परम-शांति और परम विश्राम में उतरने का मार्ग : इस अनुभव को पा लेना कि सब खेल है।**

आप रात सपना देखते हैं। कोई आपकी चोरी करके ले जा रहा है, किसी ने आपकी पत्नी की हत्या कर दी है। आप बड़े बेचैन होते हैं, बड़े परेशान होते हैं। रोते हैं सपने में, घबड़ाहट में नींद खुल जाती है, तो देखते हैं कि आंख से आंसू बह रहे हैं, छाती जोर से धड़क रही है; ब्लड प्रेशर बढ़ गया होगा। लेकिन नींद खुलते ही आप हंसने लगते हैं; क्योंकि आपको पता चलता है, जो था, वह स्वप्न था। तब फिर आप यह नहीं पूछते कि इस आदमी ने मेरी पत्नी की हत्या क्यों की। फिर आप यह नहीं पूछते कि वह एक आदमी चोरी करके ले गया है, उसने पाप किया है। फिर आप यह सवाल ही नहीं पूछते। आप इतना ही जानकर कि वह स्वप्न था—एक खेल था मन का, शान्त हो जाते हैं। फिर हृदय की धड़कन अपनी जगह लौट आती है, खून ठीक चलने लगता है, पसीना बन्द हो जाता है, आंसू सूख जाते हैं। आप फिर विश्राम में नींद में प्रवेश कर जाते हैं। स्वप्न में क्या तकलीफ आ गई थी, क्योंकि तब स्वप्न वास्तविक मालूम पड़ता था, इसलिए घबड़ा गए थे। जैसे ही पता चला स्वप्न है, घबड़ाहट खो गई. शान्त हो गए।

जब तक जगत में आपको प्रयोजन मालूम पड़ता है तब तक आप परेशान रहेंगे। क्षण आपको लगेगा जगत लीला है, स्वप्नवत एक खेल है,

कोई प्रयोजन नहीं, उसी क्षण आप स्वप्न के बाहर हो जाएंगे। यह गहनतम आधार भूमि है जिसके सहारे आदमी विराट को अपने में उतार पा सकता है। जब तक आपको लग रहा है सब तरफ वास्तविकता है, रियलिटी है, जब तक आपको लग रहा है, ऐसा होना ही चाहिए, इसके बिना जीवन बेकार हो जाएगा, तब तक आप बेचैन और परेशान होंगे और जीवन को बेकार कर लेंगे। क्योंकि परेशानी और बेचैनी में नष्ट हो जाएगी ऊर्जा। यह ऊर्जा अगर ठहर जाय, शान्त हो जाय तो इस शान्त ऊर्जा से जो झील बन जाती है—मौन की, तरंग रहित, उसी झील में सम्पर्क हो जाता है अनन्त से, विराट से, प्रभु से।

एक और मित्र ने पूछा है कि अगर आपकी बात हम मान लें और समझ लें कि सब नियति का खेल है, तो जगत में आलस्य छा जायगा।

तो छा जाने दें। ऐसे आपको क्या तकलीफ हो रही है। आपको पता है आलसियों ने क्या बुरा किया है जगत का। हिटलर कोई आलसी नहीं है, चंगेज खां कोई आलसी नहीं है, तैमूरलंग कोई आलसी नहीं है। दुनिया के जितने उपद्रवी हैं, कोई भी आलसी नहीं हैं। आप एक-आध आलसी का नाम बता सकते हैं जिसने दुनिया को कोई नुकसान पहुंचाया है। नुकसान पहुंचाने के लिए भी तो आलस्य नहीं चाहिए न।

दुनिया के पूरे इतिहास में एक आदमी नहीं है जिसको हम दोष दे सकें, जो आलसी रहा हो, जिसने किसी को कोई हानि पहुंचाई हो। आलसी न चोर हो सकता है, न राजनीतिज्ञ हो सकता है, न गुंडा हो सकता है, न हत्यारा हो सकता है।

आलसी से क्या तकलीफ है आपको? आलसी के ऊपर दोष ही क्या है? सब दोष तो कर्मठ लोगों के ऊपर है। सब उपद्रव का जाल तो कर्मठ लोगों के ऊपर है। दुनिया में थोड़ा कर्म कम हो तो हानि नहीं होगी। फिर आपको पता नहीं, जो आलसी हो सकता है, वह आलसी होता ही है—जो नहीं हो सकता, उसके होने का कोई उपाय नहीं है।

नियति का अर्थ यह है कि जो, जो हो सकता है, वही हो सकता है। जो कर्मठ हो सकता है, वह कर्मठ रहेगा ही। उसको अगर आप कोठरी में भी बन्द कर दें तो भी वह कुछ न कुछ कर्म करेगा। वह बच नहीं सकता।

तिलक, लोकमान्य तिलक बन्द थे कारागृह में। तो लिखने का कोई सामान नहीं था, तो कोयले से दीवाल पर लिखते रहे। गीता रहस्य उन्होंने कोयले से लिख-लिख कर शुरू किया है। आपके सामने कोई सब कलम, कागज, एयर कंडीशन दफ्तर भी रख दे, तो भी आप कुछ लिखेंगे, जरूरी नहीं है। जो लिख सकता है, वह जेलखाने में कोयले से भी लिखेगा। जो नहीं लिख सकता है, उसके लिखने का सब सामान भी हो, तो सामान ही देखकर उसके प्राण और शान्त हो जाएंगे और कुछ नहीं। आप जो कर सकते हैं, वह करते हैं। आपको एक कहानी कहूं।

जापान के एक राजा की मौज थी। वह आलसियों का बड़ा प्रेमी था। वह कहता था—आलसी बड़ा अनूठा आदमी है। तो उसने कहा कि और फिर आलसी का कोई कसूर नहीं। भगवान ने किसी को आलसी पैदा किया तो उसका क्या कसूर ? तो उस राजा ने सारे जापान में एक डोंडी पिटवाई। उसने कहा कि जितने भी आलसी हों, उनको सरकार की तरफ से पेंशन मिलेगी, क्योंकि भगवान ने उनको आलसी बनाया। वे कर भी क्या सकते हैं और भगवान की वजह से वे परेशान हों !

उसके मंत्री बहुत हैरान हुए कि यह तो बड़ा उपद्रव का काम है। इसमें तो पूरा मुल्क आलसी हो जाएगा और यह खजाना लुट जाएगा अलग। खजाना आलसी तो भरते नहीं, कर्मठ भरते हैं। और आलसी पेंशन पाने लगें मुफ्त, तो सभी आलसी हो जाएंगे। पर राजा का हुक्म था, तो उन्होंने कोई तरकीब निकाली फिर। उन्होंने राजा से कहा, यह तो ठीक है; लेकिन असली आलसी कौन है, इसका कैसे पता चलेगा ? राजा ने कहा यह भी कोई पता लगाना कठिन है, पता चल जाएगा। तुम खबर कर दो कि जो लोग भी पेंशन को उत्सुक हैं, राजमहल में इकट्ठे हो जाएं। राजधानी से कोई दस हजार आदमी इकट्ठे हो गए। सम्राट ने सबके लिए घास की झोपड़ियां बनवाई। उन सबको ठहरा दिया।

रात सम्राट ने कहा, झोपड़ियों में आग लगवा दो। जो आदमी झोपड़ी से बाहर न भागे उनको पेंशन देना। चार आदमी नहीं भागे। जब झोपड़ी में आग लग गई तो उन्होंने अपने कम्बल ओढ़ लिए। उनके पड़ोस के लोगों ने कहा भी कि आग लगी है, उन्होंने कहा कि अगर कोई हमें ले जाए बाहर, तो ले जाए, बाकी यह अपने बस की बात नहीं है।

जो आलसी है, उसको आप कर्मठ बना भी कहां पाते हैं। जो कर्मठ है उसे आलसी बनाने का कोई उपाय नहीं है। जिन्दगी में हर आदमी जैसा है, वैसा है, यह नियति की धारणा है। इससे आप परेशान न हों कि लोग आलसी हो जाएंगे।

जिन मित्र ने पूछा है, लगता है वह आलसी टाइप हैं। लोग हो जाएंगे, इसका तो क्या डर है। उनको डर होगा अपना। वह होगें आलसी, समझा-बुझा के कर्म में लगे होंगे। धक्का दे रहा होगा पिता, पत्नी। कोई धक्का दे रहा होगा कि लगो कर्म में। तो वे लगे होंगे अपने को समझाने। सुनकर उन्हें घबड़ाहट हुई होगी कि यह तो बात गड़बड़ है। संसार आलसी हो जाएगा। संसार नहीं हो जाएगा।

लेकिन अगर आप आलसी हो सकते हैं, तो देर मत करें, हो जाएं। किसी की मत सुनें चुपचाप हो जाएं, क्योंकि वही आपका स्वभाव है—वही आपका स्वधर्म है। फिर डरें मत तब। ध्यान रहे, इसका मतलब क्या होता है? इसका मतलब यह होता है कि फिर आलसी होने से जो परिणाम भोगना पड़े, वह भोगें। पत्नी गाली देगी, पिता डंडा लेकर खड़ा हो जाएगा, पास-पड़ोसी निन्दा करेंगे, सब जगह बदनामी होगी, उसको शान्ति से सुनना कि वे लोग बदनामी करने में बंधे हैं, बदनामी कर रहे हैं। मैं आलसी हूं, मैं आलसी हूं—अगर आप इतना भी कर पाएं तो आपका आलस्य ही आपकी साधना हो जाएगी। कर्म भी साधना बन जाता है, अगर हम उसे स्वीकार कर लें। आलस्य भी साधना बन जाता है, अगर हम उसे स्वीकार कर लें। अपने स्वभाव को स्वीकार करके जो निष्ठापूर्वक जीता है, परमात्मा उससे दूर नहीं है। वह स्वभाव कुछ भी हो।

एक दूसरे मित्र ने भी यही पूछा है। उनको डर यह है कि अगर यह बात मान ली जाय कि नियति ठीक है तो फिर चोर चोरी करता रहेगा, पापी पाप करेगा, हत्या करने वाला हत्या करेगा। फिर तो दुनिया बिल्कुल विकृत हो जाएगी। फिर दुनिया का क्या होगा?

दुनिया का इतना डर क्या है? आपसे दुनिया चल रही है। डर सदा अपना है। अगर हत्यारा सुनेगा कि नियति है, सब भगवान ने पहले से किया हुआ है। जिनको मारना है, अर्जुन से वे कह रहे हैं, उनको मैं पहले

मार चुका। हत्यारा सोचेगा बिल्कुल ठीक जिसको मुझे मारना है भगवान उसको पहले से मार चुके हैं। मैं तो निमित्त मात्र हूं। यह हत्यारों का ही डर है उसके भीतर।

लेकिन अच्छा है अगर नियति की बात सोच कर आपके भीतर की असलियत बाहर आती हो, तो यह आत्म निरीक्षण के लिए बड़ी कीमती है। अगर आपको ऐसा लगता हो कि स्वीकार कर लो सब और पहला ख्याल यह आता हो—लेकर तिजोरी पड़ोसी की नदारद हो जाओ, तो यह आत्म-निरीक्षण के लिए बड़ा उपयोगी है—इससे आपके भीतर जो छिपा है वह प्रकट होता है। आप अभी तक अपने को समझ रहे हों कि साधु हैं, आप हैं चोर। नियति के विचार ने आपको जाहिर कर दिया, उजागर कर दिया आपके सामने, नग्न रख दिया।

आप अब तक सोचते हों बड़ा शान्तिवादी हूं और अब पता चला कि दो-चार की हत्या करने में हर्ज क्या है। वे, कृष्ण तो पहले ही हत्या कर चुके हैं, मैं तो अर्जुन मात्र हूं—निमित्त। तो मैं कर दूं। तो आपको पता चला कि साधुता वगैरह सब ओछी-थोथी, ऊपर-ऊपर थी। भीतर यह असली रूप छिपा है।

नियति का विचार भी आपको आत्म-निरीक्षण का कारण बन जाएगा, एक। और दूसरी बात, नियति के विचार की पूरी शृङ्खला को समझ लेना जरूरी है। आप सोचते हों कि मैं किसी का सिर खोल दूं, क्योंकि यह तो नियति है। लेकिन वह भी आपका सिर खोलेगा तब, तब भी नियति ही मानना। तब नाराज मत हो जाना, तब चिन्तित मत होना। जब आप किसी की तिजोरी लेकर जाएं, वह तो ठीक है, लेकिन जब कोई आपकी तिजोरी लेकर चला जाय, या चार आदमी रास्ते में मिलकर आपकी तिजोरी छीन लें तब! तब वह भीठीक होगा।

मैंने सुना है एक चोर पर मुकदमा चला। तीसरी बार मुकदमा चला। और मजिस्ट्रेट ने उससे पूछा कि तुम तीसरी बार पकड़े गए हो। दो बार भी तुम्हारे खिलाफ कोई गवाही नहीं मिल सकी, कोई चश्मदीद गवाह नहीं मिला, जिसने तुम्हें चोरी करते देखा हो। अब तुम तीसरी दफे भी पकड़े गए हो, लेकिन कोई गवाह नहीं। तुम क्या अकेले ही चोरी करते

हो, कोई साझीदार, कोई पार्टनर नहीं रखते ? उस चोर ने कहा—कि दुनिया इतनी बेईमान हो गई कि किसी से साझेदारी करना ठीक नहीं है। चोर भी सोचते हैं कि ईमानदार से साझेदारी करो, कि दुनिया इतनी बेईमान हो गई कि साझेदारी चलती ही नहीं। अकेले ही करना है, जो करना है, किसी का भरोसा नहीं है। चोर भी चाहता है कि कोई भरोसे वाला आदमी मिले।

ध्यान रखना आप जब किसी का सिर खोल दें, तभी नियति नहीं है; जब वह लौट कर आपका सिर खोल दे तब भी नियति है। अगर दोनों की स्वीकृति हो तो आप जाएं और सिर खोल दें, देर मत करें। अगर यह दोनों की स्वीकृति हो कि जब आप किसी की चोरी करें तब भी और जब कोई आपका सब छीन कर ले जाय, तब भी। नियति का मतलब यह नहीं है कि आपके पक्ष में जो है, वह नियति है। नियति के दोनों पहलू हैं।

ध्यान रहे, जो आदमी नियति को स्वीकार कर लेता है, उसका जीवन इतना शांत इतना मौन हो जाता है कि अगर परमात्मा ही चाहे तो ही उससे चोरी हो। इसे समझ लें ठीक से। कोई इतना मौन और शान्त हो जाता है सब स्वीकार करके कि अगर परमात्मा ही चाहे तो ही उससे हत्या हो। आप, परमात्मा चाहे कि न हो हत्या, तो भी कर रहे हैं। आप, परमात्मा चाहे कि न हो चोरी, तो भी कर रहे हैं। आप अपने लिये हिसाब लगाकर जी रहे हैं। इस जगत के विराट योजना में आपकी अलग ही दुनिया है। आपका अलग अपना ढांचा है। अलग पटरियां हैं, उन पर दौड़ रहे हैं।

नियति मानने वाले का अर्थ यह है कि जो भी है उसे समग्रता में स्वीकार है, जो भी परिणाम हो। वह यह नहीं कहेगा कि यह बुरा हुआ मेरे साथ। अगर कल आप पकड़ गए चोरी में और अदालत ने आपको सजा दी, तो आप क्या कहेंगे फिर। क्या आप यह कहेंगे कि मेरे साथ बुरा हुआ, मैं तो नियति का ही काम कर रहा था। मजिस्ट्रेट भी नियति का ही काम कर रहा है। और वह जो पुलिसवाला आपको हथकड़ियां डाले हुए खड़ा है, वह भी नियति का ही काम कर रहा है। नियति की स्वीकृति का अर्थ है —इस जगत में ब मुझे कोई भी शिकायत नहीं। इसे ठीक से समझ लें।

नियति की स्वीकृति का अर्थ है कि कोई शिकायत नहीं मुझे जगत में। जो भी हो रहा है उसकी मर्जी। फिर मैं आपसे कहता हूं कि अगर

इतनी हिम्मत हो आपकी सब स्वीकार करने की, तो मैं आपको हक देता हूं कि चोरी, हत्या जो भी करना हो करना; लेकिन इतनी स्वीकृति पहले आ जाय। अब तक ऐसा हुआ नहीं।

जब इतनी स्वीकृति आ जाती है तो आदमी अपने को तो छोड़ ही देता है। आप हत्या करते हैं इसलिए कि आप अहंकार से जीते हैं। किसी ने जरा-सी चोट पहुंचा दी, मिटा डालूंगा उसको। किसी ने जरा सी गाली दे दी, तो आप आग से भर जाते हैं। वह आग आपके अहंकार से आती है।

जो आदमी नियति को मान लेता है, उसका अहंकार तो समाप्त हो गया—वह कहता है—मैं तो हूं ही नहीं, अब जो भी हो। इस हालत में जो भी होगा उसका जुम्मा परमात्मा का है, आपका जुम्मा नहीं है। और यह दुनिया, हमें डर लगता है कि कहीं बिगड़ न जाय। जैसे कि दुनिया बहुत अच्छी हालत में है और बिगड़ने का और कोई उपाय भी है।

लोग मेरे पास निरन्तर आते हैं, वे इसी फिक्र में रहते हैं दुनिया बिगड़ जाएगी; जैसे कि अभी कुछ बचा है बिगड़ने को! क्या बचा है बिगड़ने को? क्या डर है अब खोने के लिए? हमारी हालत ऐसी है कि जैसे नंगा नहा रहा है और सोच रहा है कि कपड़े कहां सुखाएंगे। कपड़े हों तो भी! तो यह चिन्ता में ही पड़ा है। वे नहा भी नहीं रहे हैं इसी डर से कि कपड़े कहां सुखाएंगे।

दुनिया इससे बुरी हालत में और क्या हो सकती है—जिस हालत में है। और इतनी बुरी हालत में किस कारण से है? इसलिए नहीं कि हमने नियति को मान लिया है, इसलिए इतनी बुरी हालत में है; इसलिए कि हम सब कोशिश में लगे हैं कि इसे और अच्छा बना लें। हमने इसे स्वीकार नहीं किया है। हम सब कोशिश में लगे हैं इसे बनाने की। हम सब इसे अच्छा करने की कोशिश में लगे हैं अपने-अपने ढंग से—अपने-अपने इरादे अपनी-अपनी छोटी-छोटी दुनियां सबने बांट रखी है, उसको अच्छा कर रहे हैं।

एक चोर भी अगर चोरी कर रहा है तो किसलिए, कि बच्चों को शिक्षा दे सके, कि उसकी पत्नी के पास भी एक हीरे का हार हो जाय, कि उसके पास भी एक छोटा मकान हो, अपनी बगिया हो, कि अपनी एक गाड़ी

हो । वह भी अपने कोने में अपनी दुनिया को अच्छा बनाने में, हीरे से जड़ने में, बगीचे से बसाने में लगा हुआ है। जो भी हम इस दुनिया में कर रहे हैं, उस सब में हम कुछ अपनी नजर से अच्छा करने की कोशिश में लगे हैं। अच्छा करने के लिए हम सोचते हैं, थोड़ा बुरा भी करना पड़े तो हर्ज क्या है, कर लो। हम सोचते हैं, इतना अच्छा करेंगे तो इसमें थोड़ी सी बुराई भी हुई तो क्षम्य है।

नियति का अर्थ है—कि हम दुनिया को बनाने की चिन्ता में नहीं लगे हैं—दुनिया जैसी है उसको उसके हाल पर छोड़कर, हम जहां हैं वहां चुपचाप जी रहे हैं—हम दुनिया को छू भी नहीं रहे हैं कि इसको अच्छा बनाएंगे।

ऐसी अगर संभावना बढ़ जाय जगत में तो दुनिया इससे लाख गुना बेहतर होगी। दुनिया को सुधारने वाले लोगों ने जितना उपद्रव खड़ा किया है उतना किसी ने भी खड़ा नहीं किया, वे मिस्चीफ मेकर्स हैं। उनकी बातों से ऐसा लगता है कि सारी दुनिया अच्छी करने में वे लगे हैं, लेकिन वे चीजों को विकृत करते चले जाते हैं। क्यों? क्योंकि वे परमात्मा के हाथ से, नियति के हाथ से यन्त्र अपने हाथ में ले लेते हैं—कर्ता स्वयं हो जाते हैं।

ये हमें बहुत उल्टा लगेगा, क्योंकि हमारे सोचने का सारा ढांचा इस पर निर्भर है कि हम कुछ करें—कुछ करके दिखाएं। बाप अपने बेटे को समझा रहा है, कुछ करके दिखाओ दुनिया में आए हो तो। इतना ही काफी होगा कि दुनिया को तुम्हारे होने का पता ही न चले—इससे बड़ी और कोई बात तुम नहीं कर सकते। तुम ऐसे रह जाओ कि पता ही न चले कि तुम थे। तुम्हारे जाने पर कहीं कोई शोर-शराबा न हो, कहीं कोई पत्ता भी न हिले। तो तुम परमात्मा ने जैसा चाहा, उस ढंग से जिये।

लेकिन कुछ करके दिखाओ—उसका मतलब है अहंकार को कुछ प्रकट करके दिखाओ। यह जो हमारे सोचने का ढंग है—कर्मवादी, वह नियति के बिल्कुल प्रतिकूल है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि जो नियति को स्वीकार कर लेगा, वह कुछ करेगा ही नहीं। इसका यह मतलब नहीं है कि कुछ करेगा ही नहीं। हमारे तर्क बड़े अजीब हैं। एक मित्र कहता है कि वह कुछ करेगा ही नहीं और एक मित्र कहता है, वह हत्या

करेगा, चोरी करेगा। या तो करेगा तो बुरा करेगा नियति को स्वीकार करने वाला। और या फिर कुछ करेगा ही नहीं। यह तो हमारी धारणा है।

नहीं, नियति को स्वीकार करनेवाला कर्त्ता नहीं रहेगा, परमात्मा जो करवा रहा है, करता रहेगा। अपनी तरफ से कुछ करना नहीं जोड़ेगा, बहेगा, तैरेगा नहीं। उसकी धारा में बहता चला जाएगा। और बुरा बुरा तो हम करते ही तब हैं जब अहंकार हममें गहन होता है। सब बुराई की जड़ में 'मैं' है। अब जिसके पास 'मैं' नहीं है उससे कुछ बुरा नहीं होने वाला है। और अगर बुरा हमें दिखाई भी पड़े, तो परमात्मा की कोई मर्जी होगी, उस बुरे से कुछ भला होता होगा।

अब हम सूत्र को लें :

इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर कृष्ण बोले, "हे अर्जुन ! मैं लोकों का नाश करने वाला बढ़ा हुआ महाकाल हूं। इस समय इन लोगों को नष्ट करने के लिए प्रवृत्त हुआ हूं। इसलिए जो प्रतिपक्षियों की सेना में स्थित हुए योद्धा लोग हैं, वे सब तेरे बिना भी नहीं रहेंगे अर्थात् तेरे युद्ध न करने से भी इन सबका नाश हो जायेगा। इससे तू खड़ा हो और यश को प्राप्त कर तथा शत्रुओं को जीत कर धन-धान्य से सम्पन्न राज्य को भोग। ये सब शूर-वीर पहले से ही मेरे द्वारा मारे हुए हैं। हे सव्यसाचिन् ! तू तो केवल निमित्त मात्र हो जा।

तथा इन द्रोणाचार्य और भीष्म पितामह, जयद्रथ और कर्ण तथा और बहुत से मेरे द्वारा मारे हुए शूरवीर योद्धाओं को तू युद्ध में मार और भय मत कर। निःसन्देह तू युद्ध में वैरियों को जीतेगा, इसलिए युद्ध कर।"

यह नियति की धारणा की पूरी व्याख्या इस सूत्र में है, "हे अर्जुन ! इस क्षण तू जो मेरा भयंकर रूप देख रहा है, विकराल, इस क्षण तू जो देख रहा मेरे मुंह से मृत्यु, इस क्षण तू जो देख रहा है अग्नि की लपटें मेरे मुंह से निकलती हुई, योद्धाओं को दौड़ता हुआ मृत्यु में मेरे मुंह में, उसका कारण है। मैं लोकों का नाश करने वाला बढ़ा हुआ महाकाल हूं। इस क्षण में, मैं एक महानाश के लिए उपस्थित हुआ हूं। इस क्षण एक विराट विनाश होने को है। और उस विराट विनाश के लिए मेरा मुंह मृत्यु बन गया है। मैं इस समय महाकाल हूं। यह मेरा एक पहलू है विध्वंस का। यह मेरा एक रूप

है। एक रूप है मेरे सृजन का, एक रूप है मेरे विध्वंस का। अभी मैं विध्वंस के लिए उपस्थित हूं। यह तेरे सामने जो युद्ध के लिए तत्पर शूरवीर खड़े हैं मैं इन्हें लेने आया हूं। ये मेरी तरफ दौड़ रहे हैं ऐसा ही नहीं, मैं इन्हें लेने आया हूं। ये पतगों की तरह दौड़ते दीये की तरफ जो योद्धा हैं, ये अपने आप दौड़ रहे हैं, ऐसा नहीं, मैं इन्हें निमंत्रण दिया हूं। ये थोड़ी ही देर में मेरे मुंह में समा जाएंगे। तूने भविष्य में झांक कर देख लिया। मेरे मुंह में तू अभी जो देख रहा है, वह थोड़ी बाद हो जाने वाली घटना है।"

इस समय हम, इस संबंध में थोड़ी-सी समय की बात समझ लें। भविष्य वही है, जो हमें दिखाई नहीं पड़ता। नहीं दिखाई पड़ता इसलिए सोचते हैं, नहीं है; क्योंकि जो हमें दिखाई पड़ता है सोचते हैं—है। जो नहीं दिखाई पड़ता, सोचते हैं—नहीं है। भविष्य हमें दिखाई नहीं पड़ता, इसलिए सोचते हैं—नहीं है। लेकिन जो नहीं है, वह हो कैसे जाएगा? जो नहीं है, वह आ कैसे जाएगा? शून्य से तो कुछ आता नहीं है। जो किसी गहरे अर्थ में आ ही न गया हो, वह आएगा भी कैसे।

एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक दिलाबार प्रयोगशाला में, आक्सफोर्ड में, फूलों के चित्र ले रहा था। और एक दिन बहुत चकित हुआ। उसने एक बहुत ही संवेदनशील नई खोजी गई फिल्म पर एक गुलाब की कली का चित्र लिया। लेकिन वह चकित हो गया। कली तो थी बाहर और चित्र आया फूल का, तो घबड़ा गया। यह हुआ कैसे? पर उसने प्रतीक्षा की और हैरानी तो तब उसकी बढ़ गई कि जब वह कली खिलकर फूल बनी, तो वह ठीक वही फूल थी जिसका चित्र आ गया था। दिलाबार प्रयोगशाला एक अनूठी प्रयोगशाला है दुनिया में। और वहां वे प्रयोग करते हैं इस बात के कि अगर फूल थोड़ी देर बाद खिलने वाला है, तो किसी गहरे सूक्ष्म तल पर अभी भी पंखुड़ियां खिल गई होंगी। जब यह घटना घटी थी, आज से कोई दस साल पहले, तब तक वैज्ञानिकों के पास कोई व्याख्या नहीं थी कि यह फूल का फोटो कैसे आया। जो फूल अभी है नहीं, थोड़ी देर बाद होगा। अभी तो कली है, फूल का चित्र आने का अर्थ क्या हुआ?

लेकिन, फिर रूस में, एक दूसरे विचारक और वैज्ञानिक जो कि फोटोग्राफी पर काम कर रहा है गहन—पिछले तीस वर्षों से, उसने राज खोज निकाला। उसने हजारों चित्र लिए हैं भविष्य के—थोड़ी देर बाद के।

और उसने जो आधार खोज निकाला है, वह यह है कि जब फूल की कली खिलती है तो खिलने के पहले अभी फूल तो बन्द है, खिलने के पहले फूल के आसपास का जो प्रकाश-आभा है, प्रकाश-वर्तुल है फूल की पत्तियों से जो किरणें निकल रही हैं—वे खिल जाती हैं पहले। वे रास्ता बनाती हैं, पंखुड़ियों के खिलने का, वे पहले खिल जाती हैं। प्रकाश की सूक्ष्म किरणें पहले खिल जाती हैं, ताकि रास्ता बन जाय। फिर उन्हीं के आधार पर, उन्हीं प्रकाश की किरणों के आधार पर फूल की पंखुड़ियां खिलती हैं। तो वह जो चित्र आया था धुंधला, वह उन प्रकाश की पत्तियों का था जो असली हमारी आंख में दिखाई पड़ने वाली पत्तियों के पहले खिलतीं हैं।

इस रूसी वैज्ञानिक का कहना है कि हम बहुत शीघ्र आदमी की मृत्यु का चित्र ले सकेंगे, क्योंकि मरने के पहले प्रकाश के जगत में उसकी मृत्यु भर जाती है। हम तो बहुत दिन से मानते हैं कि छः महीने पहले, मरने के छः महीने पहले आदमी की जो आभा है, उसका जो प्रकाश मण्डल है, वह शून्य हो जाता है। और प्रकाश मण्डल की किरणें जो बाहर जा रही थीं, वे लौटकर वापस अपने में गिरने लगती हैं; जैसे पंखुड़ी बन्द हो जाती है।

इस रूसी वैज्ञानिक का कहना है कि अब हम चित्र ले सकते हैं। एक और अनूठी घटना उसको खुद घटी। वह प्रयोग कर रहा था कुछ फूलों के चित्र ले रहा था। वह चकित हुआ कि हाथ में फूल लिए हुए उसने एक चित्र लिया, तो उसके हाथ का जो चित्र आया, वह बहुत अजीब था, ऐसा कभी नहीं आया था। हाथ का उसका चित्र कई बार आया था फूल के साथ, लेकिन इस बार, इस हाथ की हालत बड़ी अजीब थी। जैसे हाथ अस्त-व्यस्त था। और हाथ में जो किरणें दिखाई पड़ रही थीं, वे एक दूसरे से लड़ रही थीं। लेकिन हाथ ठीक वैसे ही था कोई तकलीफ न थी, कोई अड़चन न थी, कोई बीमारी न थी।

तीन महीने बाद बीमार पड़ा वह और उसके हाथ में फोड़े-फुन्सी आए और उसके हाथ की चमड़ी पर रोग फैल गया। तब उसने जो चित्र लिया हाथ का तब उसे पता चला कि वह ठीक जो तीन महीने पहले झलक मिली थी, वही झलक गहरी हो गई है। फिर उसने स्वस्थ हाथों के चित्र

लिए। उनमें किरणों की झलक अलग है, हारमोनियस है। सब किरणें लय-बद्ध हैं। बीमार लय टूट जाती है।

उसका कहना है कि अगर हाथ में कोई बीमारी आ रही हो, तो तीन महीने पहले हाथ की किरणों की लय टूट जाती है। उसका कहना यह भी है कि बहुत शीघ्र हम अस्पतालों में इसकी व्यवस्था कर सकेंगे कि आदमी बीमार होने के पहले सूचित किया जा सके कि तुम फलां बीमारी से, इतने महीने बाद परेशान हो जाओगे। अभी इलाज कर लो ताकि वह बीमारी न आ सके।

भविष्य का अर्थ है कि हमें दिखाई नहीं पड़ रहा। ऐसा समझें कि मैं एक बहुत लम्बे वृक्ष के नीचे बैठा हूं, आप वृक्ष के ऊपर बैठे हैं। एक बैलगाड़ी रास्ते से आती है मुझे दिखाई नहीं पड़ रही। रास्ता लम्बा है। मुझे दिखाई नहीं पड़ रही। मेरे लिए बैलगाड़ी अभी नहीं है, भविष्य में है। आप झाड़ के ऊपर बैठे हैं, आपको बैलगाड़ी दिखाई पड़ती है। आप कहते हैं, एक बैलगाड़ी रास्ते पर आ रही है। मैं कहता हूं, झूठ। बैलगाड़ी रास्ते पर नहीं है। आप कहते हैं थोड़ी देर में दिखाई पड़ेगी। तुम्हारे लिए अभी भविष्य में है, मेरे लिए वर्तमान में, क्योंकि मुझे दूर तक दिखाई पड़ रहा है। फिर बैलगाड़ी आती है और मैं कहता हूं, आपकी भविष्यवाणी सच है। कोई भविष्यवाणी न थी, सिर्फ दूर तक दिखाई पड़ रहा था। फिर बैलगाड़ी चलती हुई आगे निकल जाती है। थोड़ी देर बाद मुझे दिखाई नहीं पड़ती है। मैं कहता हूं, बैलगाड़ी फिर खो गई। आप वृक्ष के ऊपर से कहते हैं अभी भी नहीं खोई, बैलगाड़ी अभी भी रास्ते पर है; क्योंकि मुझे दिखाई पड़ रही है।

जैसे जमीन पर बैठकर अलग दिखाई पड़ता है, वृक्ष पर बैठकर ज्यादा दिखाई पड़ता है। ठीक चेतना की भी अवस्थाएं हैं। जहां हम खड़े हैं—जैसे मैंने चार अवस्थाएं कहीं आपसे। पहली, जहां 'मैं' की भीड़. वहां से हमें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। जब तक ठीक हमारी आंख के सामने न आ जाय, हमें कुछ दिखाई नहीं पड़ता। फिर एक 'मैं' रह जाता है। हमारी दृष्टि बढ़ जाती है। हम ऊंचे तल पर आ गए। भीड़ से ऊपर उठ गए। एक बड़े वृक्ष पर बैठे हुए हैं। हमें दूर तक दिखाई पड़ने लगता है। कोई चीज आती है उसके पहले दिखाई पड़ने लगती है। फिर तीसरा और ऊंचा

तल है, जहां कि मुझे पता चल गया कि 'मैं नहीं हूं' यह बड़ी ऊंचाई आ गई है। इस ऊंचाई से वे चीजें दिखाई पड़ने लगती हैं जो बहुत दूर हैं, कभी होंगी।

फिर एक और ऊंचाई है जहां कि 'मैं नहीं हूं,' यह भी नहीं बचा। यह आखिरी ऊंचाई है। इससे ऊपर जाने का कोई उपाय नहीं है। यहां से सब दिखाई पड़ने लगता है। ऐसी अवस्था के व्यक्ति को हमने सर्वज्ञ कहा है। इसके लिए फिर कुछ भी भविष्य नहीं रह जाता है। इसके लिए सभी कुछ वर्तमान हो जाता है।

यह जो कृष्ण को दिखाई पड़ा, कृष्ण में अर्जुन को दिखाई पड़ा—योद्धाओं का समा जाना और वह घबड़ाकर पूछने लगा। कृष्ण उससे कह रहे है कि तू भयभीत न हो अर्जुन, मैं इन युद्ध के लिए इकट्ठे हुए वीरों का अन्त करने के लिए आया हूं। मैं इस समय महाकाल हूं। उसकी ही झलक तूने देख ली। जो थोड़ी देर बाद होने वाला है, उसका प्रिव्यू, उसकी पूर्व झलक तुझे दिखाई पड़ गई है।

इससे तू खड़ा हो, यश को प्राप्त कर, शत्रुओं को जीत। ये शूरवीर पहले से ही मेरे द्वारा मारे जा चुके हैं। तू यह चिन्ता भी मत कर कि तू इन्हें मारेगा। तू यह ध्यान भी मत रख कि तू इनके मारने का कारण है। तू कारण नहीं है, तू निमित्त है। निमित्त और कारण में थोड़ा फर्क समझ लेना चाहिए।

कारण का तो अर्थ होता है—जिसके बिना घटना न घट सकेगी। निमित्त का अर्थ होता है—जिसके बिना भी घटना घट सकेगी। आप, पानी गर्म करते हैं। गरम करने में आग कारण है। अगर आग न हो तो फिर पानी गर्म नहीं हो सकेगा। कोई उपाय नहीं है। लेकिन जिस बर्तन में रखकर आप गर्म कर रहे हैं वह कारण नहीं है, वह निमित्त है। इस बर्तन के न होने पर कोई दूसरा बर्तन होगा, कोई तीसरा बर्तन होगा।

बर्तन न होगा तो कोई और उपाय भी हो सकता है। जिस चूल्हे पर आप गर्म कर रहे हैं, यह चूल्हा न होगा तो कुछ और होगा, कोई सिगड़ी होगी, कोई स्टोव होगा, कोई बिजली का यन्त्र होगा, कोई और उपाय हो सकता है। गर्मी तो कारण है। लेकिन ये सब निमित्त हैं। आप गर्म कर रहे

हैं, ये एक निमित्त है। कोई और गर्म कर सकता है—कोई पुरुष, कोई स्त्री, कोई बच्चा, कोई बूढ़ा, कोई जवान। आप भी नहीं होंगे तो कोई गर्म नहीं होगा पानी, ऐसा नहीं। एक बात, आग चाहिए। वह कारण है। बाकी सब निमित्त हैं। निमित्त बदले जा सकते हैं, कारण नहीं बदला जा सकता।

कृष्ण यह कह रहे हैं, कारण तो मैं हूं, तू निमित्त है। अगर तू नहीं मारेगा, कोई और मारेगा। इनकी मृत्यु होने वाली है। इनकी मृत्यु आ चुकी है। इनकी मृत्यु एक अर्थ में घटित हो चुकी है। मैं इन्हें मार ही चुका हूं अर्जुन। अब तू तो सिर्फ मुर्दों को मारने के काम में लगाया जा रहा है।

मुल्ला नसरुद्दीन की मुझे एक घटना याद आती है। मुल्ला नसरुद्दीन के गांव में एक योद्धा आया। और वह योद्धा काफी हाऊस में बैठकर अपनी बहादुरी की बड़ी चर्चा करने लगा। और उसने कहा, आज युद्ध बड़ा घमासान था। और मैंने न मालूम कितने लोगों की गर्दनें साफ कर दीं, गिनती भी नहीं है। कितने लोगों को मैंने काटकर गिरा दिया; जैसे कोई घास काट रहा हो।

नसरुद्दीन भी बैठा था। उससे नहीं रहा गया। उसने कहा यह कुछ भी नहीं। एक दफा मेरे जीवन में भी ऐसा मौका आया था। युद्ध में मैं भी गया था। और गिनती तो नहीं की लेकिन फिर भी अन्दाज से कहता हूं, कम से कम पचास आदमियों की टांगें मैंने ऐसे काट डालीं जैसे घास काटा हो।

उस योद्धा ने कहा—टांगें! हमने कभी सुना नहीं कि टांगें भी युद्ध में काटी जाती हैं, सिर काटने चाहिए। तो नसरुद्दीन ने कहा, सिर तो कोई पहले ही काट चुका था। वह मौका मुझे नहीं मिला। मैं तो गया देखा कि सिर तो कटे पड़े थे, मैंने कहा, क्यों चूकना; मैंने टांगें काट डालीं। कोई गिनती नहीं है।

ये कृष्ण, अर्जुन से यही कह रहे हैं कि तू बहुत परेशान मत हो; जिनको तू मारने का सोच रहा है, उनको मैं पहले ही काट चुका हूं। टांगें ही काटने का तेरे ऊपर जुम्मा है, सिर कट चुके हैं। और ये टांगें काटने के कारण अकारण ही तू यश को प्राप्त हो जाएगा, धन को, राज्य को प्राप्त कर लेगा। वह तेरी मुफ्त की उपलब्धि होगी, सिर्फ निमित्त होने के कारण।

जिन्हें तू सोचता है कि इन्हें मारने से हिंसा लगेगी, वे मर चुके हैं, वे मृत हैं। तू सिर्फ मुर्दों को आखिरी धक्का दे रहा है; जैसे ऊंट पर कोई आखिरी तिनका रखे और ऊंट बैठ जाय। बस तू आखिरी तिनका रख रहा है और ऊंट बैठने के ही करीब है। तू नहीं सहारा देगा तो कोई और यह तिनका रख देगा। यह पैर काटने का काम दूसरा भी कर सकता है, क्योंकि गर्दन काटने का असली काम हो चुका है। नियति उन्हें काट चुकी है। इसका क्या अर्थ है ?

इसका अर्थ है कि दुर्योधन जहां खड़ा है, उसके साथी जहां खड़े हैं, उसके मित्रों की फौज जहां खड़ी है, वे जो कुछ भी कर चुके हैं—घड़ा भर चुका है, फूटने के करीब है। तू मुफ्त ही यज्ञ का भागी हो जाएगा। तू यह मौका मत छोड़। और ध्यान रखना कि तू निमित्त ही था इसलिए किसी अहंकार को बनाने की चेष्टा मत करना कि मैं जीत गया, कि मैंने मार डाला। इसमें दोहरी बातें हैं।

एक तो कृष्ण यह कह रहे हैं, तू नियति को स्वीकार कर ले—जो हो रहा है उसे हो जाने दे। और दूसरी उससे भी महत्वपूर्ण जो बात है, वह यह कह रहे हैं कि अगर तू जीत जाएगा। और जीत जाएगा, क्योंकि मैं तुझसे कहता हूं, जीत निश्चित है—जीत हो ही गई है। तू जैसा है, उसके कारण तू जीत गया है; तू जो करेगा, उसके कारण नहीं। तू जैसा है, उसके कारण तू जीत गया है।

राम और रावण को युद्ध पर खड़े देखकर कहा जा सकता है कि राम जीत जाएंगे। जिसको जीवन की गहराइयों का पता है, जिसे सूत्र पढ़ने आते हैं, वह कह सकता है कि राम जीत जाएंगे। राम जीत ही गए, क्योंकि रावण जो भी कर रहा है—वे हारने के ही उपाय हैं। बुराई हारने का उपाय है। राम कुछ भी बुरा नहीं कर रहे हैं। वे जीतते जा रहे हैं। वह जो अच्छा करता है, वह जीतने का उपाय है। तो हारने के पहले भी कहा जा सकता है कि रावण हार जाएगा। हारने के पहले कहा जा सकता है कि दुर्योधन, उसके साथी हार जाएंगे। उन्होंने जो भी किया है वह पाप पूर्ण है। उन्होंने जो भी किया है वह बुरा है। सबसे बड़ी बुराई उन्होंने क्या की है। सबसे बड़ी बुराई उन्होंने यह की है कि जगत की सत्ता से अपने को

तोड़कर वे निरे अहंकारी हो गए हैं। उन्होंने प्रवाह से अपने को तोड़ लिया है।

ऐसा समझें। हमें दिखाई नहीं पड़ता इसलिए समझना मुश्किल होता है। एक नदी में हम दो लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े डाल दें। और एक टुकड़ा चेष्टा करने लगे नदी के विपरीत धारा में बहने की। करेगा नहीं, क्योंकि लकड़ी के टुकड़े इतने नासमझ नहीं होते, जितने आदमी होते हैं। मगर मान लें कि आदमी जैसे हों लकड़ी के टुकड़े, आदमियों की बीमारी उनको लग गई, आदमियों के साथ रहने से इन्फेक्शन हो गया; और एक टुकड़ा नदी की तरफ ऊपर बहने लगा।

क्योंकि आदमी को हमेशा धारा के विपरीत बहने में मजा आता है। धारा में बहने में क्या रखा है, कोई भी बह जाता है। कुछ उल्टा करो! चौराहे पर आप शीर्षासन लगाकर खड़े हो जाएं, भीड़ लग जाएगी; पैर पर खड़े रहे, कोई देखने नहीं आएगा। क्या! मामला क्या है? सिर के बल जो आदमी खड़ा है, उल्टा कुछ कर रहा है। यह आकर्षित करता है। आदमी उल्टा करने में उत्सुक है। क्यों? क्योंकि उल्टे से अहंकार सिद्ध होता है। सीधे से कोई अहंकार सिद्ध होता नहीं।

अगर आप किसी को रास्ते में से चलते में गिर रहा हो कोई संभाल ले, अखबार में कोई खबर नहीं छपेगी। रास्ते में कोई चल रहा हो, धक्का दे के गिरा दे, दूसरे दिन खबर छप जाएगी। कुछ अच्छा करिए दुनिया में किसी को पता नहीं चलेगा, कुछ बुरा करिए फौरन पता चल जाएगा। अखबार उठाकर देखते हैं आप। पहली लकीर से लेकर आखिरी लकीर तक सारी लकीर उन लोगों के बाबत है, जो कुछ उल्टा कर रहे हैं। कहीं कोई दंगा-फसाद हो रहा हो, कहीं कोई हड़ताल हो रही हो, कहीं कोई चोरी, कहीं डाका, कहीं कोई चेरीयट आया हो, कहीं कुछ उपद्रव हुआ हो तो अखबार में खबर बनती है।

आदमी उल्टे में उत्सुक हैं तो हो सकता है लकड़ी का टुकड़ा उल्टा बहे। जो टुकड़ा उल्टा बहेगा, हम पहले से ही कह सकते हैं किनारे खड़े हुए कि यह हारेगा। इसमें कोई बड़ी बुद्धिमता की जरूरत नहीं है, क्योंकि धारा के विपरीत लकड़ी का टुकड़ा बहने की कोशिश कर रहा है। जो नदी की

धारा के साथ बह रहा है, हम कह सकते हैं, इसको हराने का कोई उपाय नहीं है। तो हराइएगा कैसे ? इसने कभी जीतने की कोई कोशिश ही नहीं की। इसको हराइयेगा कैसे ? यह तो नदी की धारा में पहले से ही बह रहा है, स्वीकार करके। यह तो कहता है, धारा ही मेरा जीवन है—जहां ले जाए, जाऊंगा। कहीं और मुझे जाना नहीं। राम नदी की धारा में बहते हुए थे। इसलिए पहले से ही कहा जा सकता है, वे जीतेंगे। रावण हारेगा वह धारा के विपरीत बह रहा है।

ये, कृष्ण अर्जुन से जो कह रहे हैं, किसी पक्षपात के कारण नहीं कि मैं तेरे पक्ष में हूं, तेरा मित्र हूं इसलिए तू जीतेगा। इसका गहन कारण यह है कि कृष्ण देख सकते हैं कि अर्जुन जिस पक्ष में खड़ा है, वह धारा के अनुकूल बहता रहा है। और अर्जुन के विपरीत जो लोग खड़े हैं, वे धारा के प्रतिकूल बहते रहे हैं उनकी हार निश्चित है। ये हारेंगे, पराजित होंगे। इसलिए तू नाहक ही अड़चन में पड़ रहा है। और तेरी अड़चन ही तुझे धारा के विपरीत बहने की संभावना जुटाए दे रही है। तू है क्षत्रिय। तेरी सहज धारा, तेरा स्वधर्म यही है कि तू लड़। और लड़ने में निमित्त मात्र हो जा। तू संन्यास की बातें कर रहा है, वह उल्टी बातें हैं।

अर्जुन अगर संन्यासी हो जाय तो प्रभावित बहुत लोगों को करेगा। प्रभावशाली व्यक्ति था। लेकिन हो नहीं पाएगा संन्यासी। और अगर संन्यास में यह बैठ भी जाए कहीं जंगल में ध्यान वगैरह करने, तो ज्यादा देर नहीं चलेगा ध्यान वगैरह उसका। एक हरिण दिखाई पड़ जाएगा और उसके हाथ धनुष-बाण खोजने लगेंगे। और एक कौआ ऊपर से बीट कर कर देगा, तो पत्थर उठाकर उसका वह वहीं फैसला कर देगा।

वह जो उसका होना है, जो स्वधर्म है उसका—वह योद्धा है। उसमें कहीं भी कोई व्यवस्था नहीं है, जिससे कि वह संन्यासी हो सके। तो कृष्ण उससे कह रहे हैं कि तू नदी में उल्टे बहने की कोशिश कर रहा है, अगर तू सोचता है कि मैं ऐसा करूं, वैसा करूं, यह ठीक नहीं है, वह ठीक है। कृष्ण उससे कह रहे हैं कि सिर्फ बह जा, नियति के हाथ में छोड़ दे। तू निमित्त हो जा, उनकी हार निश्चित है। और विपक्ष में खड़े योद्धा मेरे मुंह में जा रहे हैं—मृत्यु में। यह निश्चित है, वे पहले ही मारे जा चुके हैं। ये

द्रोणाचार्य, भीष्मपितामह, ये जयद्रथ और कर्ण, जो महाप्रतापी हैं, महा वीर हैं—इन सभी से भय मत कर। क्योंकि जिनके साथ ये खड़े हैं, वे गलत लोग हैं। उनके साथ ये पहले ही डूब चुके।

भीष्मपितामह भले आदमी हैं, लेकिन गलत लोगों के साथ खड़े हैं। अक्सर भले आदमी कमजोर होते हैं। और अक्सर भले आदमी कई दफा चुपचाप बुराई को सह लेते हैं। और बुराई के साथ खड़े हो जाते हैं। ये जो खड़े हैं बुराई के साथ, ये कितने ही भले हों और इनके पास कितनी ही शक्ति हो, तेरी शक्ति से ये नहीं कटेंगे, विराट की शक्ति के विपरीत होने से ये कट गए हैं। इस अर्थ को ठीक से समझ ले। तू इन्हें नहीं मार पाएगा अर्जुन। और कर्ण से सीधा मुकाबला हो सकता था और कुछ तय करना मुश्किल है कि कौन जीतेगा। वे एक ही मां के बेटे हैं। और कर्ण रत्ती भर भी कम नहीं है। डर तो यह है कि वह ज्यादा भी साबित हो सकता है। लेकिन हारेगा, कोई ताकत के कारण ही नहीं, हारेगा इसलिए कि विराट की शक्ति के विपरीत खड़ा है। जो विराट चाहता है, उसके विपरीत खड़ा है। विराट के विपरीत खड़ा होना खतरनाक है। फिर कभी छोटा आदमी भी हरा सकता है।

जापान में जुजुत्सु एक जूडो की कला होती होती है, उसमें छोटा बच्चा भी पहलवान को हरा देता है। स्त्री भी पुरुष को हरा देती है। अभी तो पश्चिम में, चूंकि स्त्रियों का आंदोलन चलता है—लिब-मूवमेन्ट—स्वतन्त्रता का, वे सभी स्त्रियां जुजुत्सु सीख रही हैं। क्योंकि पुरुषों से अगर टक्कर लेनी पड़े, तो क्या उपाय है; क्योंकि पुरुष शरीर से तो ज्यादा ताकतवर है। इसलिए अमरीका में नगर-नगर में जुजुत्सु के स्कूल खुलते जा रहे हैं। स्त्रियां ट्रेनिंग ले रहीं और थोड़े सावधान रहना आदमी, कल यहां भी लेंगी। अगर जुजुत्सु की ट्रेनिंग ठीक से ले ली हो तो बड़े से बड़ा ताकतवर पुरुष साधारण कमनीय स्त्री से हार जाता है। कला क्या है? कला यही है, जो कृष्ण कह रहे हैं। जुजुत्सु की कला यह है कि विराट के साथ रहना। इस आदमी की फिक्र मत करना, विराट की फिक्र करना। इस आदमी से सीधे मत लड़ना। तुम तो विराट के साथ सहयोग करना। फिर यह आदमी नहीं जीत सकेगा। उससे सहयोग का पूरे का पूरा प्रशिक्षण है, पूरी साधना है कि विराट से कैसे सहयोग करना। तो जुजुत्सु का पहला

नियम है कि जुजुत्सु का साधक जब खड़ा होगा, तो यह नहीं कहता कि मैं लड़ रहा हूं। वह अपने को पहले समर्पित कर देता है—विराट को कि मैं परमात्मा को समर्पित हूं। अगर तेरी मरजी हो, तो जो हो। फिर वह लड़ता है। फिर लड़ने में वह हमला नहीं करता। जुजुत्सु का साधक हमला नहीं करता, सिर्फ हमला सहता है। वह कहता है, तुम मुझे मारो मैं सहूंगा, क्योंकि परमात्मा मेरे साथ है।

आप जानकर हैरान होंगे कि अगर कोई व्यक्ति बिलकुल शान्त, सहने को राजी हो और आप घूंसा मार दें उसको और वह जरा भी विरोध न करे, अचेतन विरोध भी न करे, साधना यही है। क्योंकि अचेतन अगर कोई घूंसा आपको मारने आता है, तो आप कड़े हो जाते हैं—आपने विरोध शुरू कर दिया—आपकी हड्डियां कड़ी हो जाती हैं।

जुजुत्सु की कला कहती है कि आपकी हड्डियां अगर कड़ी हो गईं और किसी ने चोट मारी, तो कड़े होने की वजह से टूट जाती हैं, उसकी चोट से नहीं टूटतीं। अगर आप नर्म रहे, और आपने जरा भी रेजिस्ट नहीं किया, आप सहने को राजी रहे कि तुम घूंसा मारो, हम तुम्हारे घूंसे को पी जाएंगे, क्योंकि विराट हमारे साथ खड़ा है—उसका हाथ टूट जाएगा—हाथ में फ्रेक्चर हो जाएगा। और यह वैज्ञानिक है।

इसको आप ऐसा भी देख सकते हैं। एक बैलगाड़ी में आप बैठे हैं और एक शराबी बैठा है। बैलगाड़ी उलट जाए, आपको फ्रेक्चर हो जाएगा, शराबी को बिलकुल नहीं होगा। शराबी रोज गिर रहा है सड़क पर, कम से कम इतना तो सीखो उससे कि चोट नहीं खाता। रोज सुबह देखो फिर ताजे हैं। नहा-धोकर फिर चले जा रहे हैं कहीं न कहीं। रोज गिर रहे हैं, इनको चोट क्यों नहीं लगती? शराबी अपने को अलग नहीं रखता। जब शराब पी लेता है तो बेहोश हो गया—वह प्रकृति का हिस्सा हो गया। अब उसको कोई होश नहीं कि मैं हूं। अब वह गिरता है, तो कड़ा नहीं हो पाता। बैलगाड़ी उलट रही, आप भी उलट रहे हैं, वह भी उलट रहा है आपके साथ। आप संभल गए, बचने लगे, आपका अहंकार आ गया कि मैं बचूं। और शराबी का कोई अहंकार नहीं आया, वह लुढ़क गया। जैसे ही बैलगाड़ी लुढ़की, उसके साथ लुढ़क गया, उसका कोई विरोध नहीं है, कोई प्रतिरोध नहीं है, कोआपरेशन है, सहयोग है। उसको चोट नहीं लगेगी।

छोटे बच्चे गिरते हैं तो चोट नहीं लगती है। जैसे-जैसे बड़े होने लगते हैं, चोट लगने लगती है। जिस दिन से आपके बच्चे को चोट लगने लगे, समझना कि अहंकार निर्मित हो गया। जब तक उसको चोट नहीं लग रही तब तक अहंकार नहीं है। वह गिरता है तो गिरने के साथ होता है, रोकता नहीं कि अरे, मैं गिर रहा हूं। अभी कोई है नहीं जो गिरने से रोके अपने को—वह गिर जाता है, गिर कर उठ जाता है, कहीं कोई चोट लगती नहीं।

यह जो कृष्ण का कहना है कि तू जीता ही हुआ है, वह इसीलिए कि तू इस पक्ष में है, जो बुराई के साथ नहीं है। तू विपरीत नहीं जा रहा है। तू साथ बह रहा है। और ये हारे ही हुए हैं, ये विपरीत बह रहे हैं। ये नियति तय हो गई है अर्जुन, इसलिए तू व्यर्थ चिन्तित न हो, निःसन्देह तू जीतेगा, युद्ध कर!

○

संकलन
अरविन्दकुमार

मनन जीवनोपयोगी (आध्यात्मिक हिन्दी मासिक)

जिसमें प्रतिमास सन्त-महात्मा व विद्वानों के विचारों को संकलित कर ४० पृष्ठों में मन-मोहक चित्रों सहित दो रंगों में पाठकों तक पहुंचाया जाता है।

मूल्य—१ प्रति : ५० पैसे, वार्षिक : ५ रुपये

प्राप्ति स्थान—

गुप्ता मिल्स इस्टेट, रे रोड, बम्बई—१०

तुम्ही हो प्यार के काबिल

तुम्हीं हो प्यार के काबिल, मगर मैं प्यार दूं कैसे
बसाने योग्य हो दिल में, मगर व्यवहार दूं कैसे

तुम्हारे हुस्न के जितने हुए चर्चे, अधूरे हैं
सभी उपमान फीके हैं, तुम्हें इजहार दूं कैसे

तुम्हीं हो रोशनी, आबाद तुमसे है बना गुलशन
गुलों में तुम महकते हो, तुम्हें उपहार दूं कैसे

तुम्हीं सब में किलकते हो, तुम्हीं सब में पुलकते हो
जहां में बस तुम्हीं तुम हो, तुम्हें विस्तार दूं कैसे

कभी तुम रूप में आकर बिहंस रजनीश-से जाते
बहुत मोहक हुआ तुमसे, तुम्हें संसार दूं कैसे

□ *स्वामी योग प्रीतम*
भीलवाड़ा (राजस्थान)

महाभिनिष्क्रमण

★
★
★

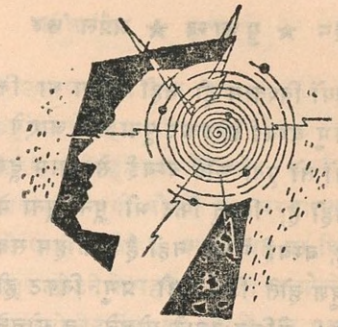

सम्भावनाओं की आहट

···भगवान पूना जाने वाले हैं। ···स्थायी तौर पर अब वहीं रहेंगे। ···बकवास। ···भला भगवान पूना जाएंगे? ···क्यों, पूना में तकलीफ क्या है? ···कमाल करता है यार तू! अरे, पूना भी कोई रहने की जगह है? होपलेस! ···२१ मार्च को जाएंगे। ···बहुत बड़ा आश्रम बनेगा वहां। ···कोरेगांव नाम की जगह है। ···कोरेगांव तो सतारा के पास है। ···फिर तो बड़ा दूर पड़ेगा। ·· संदेश तो कहता था कि स्टेशन से आधे घंटे का रास्ता है। ···जो कुछ भी हो, एक बात सुनी? ···नहीं तो। ···भगवान ने कहा है कि पूना में जो भी प्रोग्राम होंगे, सब फ्री होंगे। ···सच? ···हां, कोई टिकट नहीं लगेगी। ···फिर तो बड़ा मजा आयेगा! अपने जैसे फटीचरों का भी भाग्य अब खुला, वाह-वाह! ···मगर शिविर अब कहां होगे? ···पूना में ही। ·· ग्यारह एकड़ जमीन है। ···कोई तो आठ एकड़ बता रहा था। ···जमीन है किसकी? ···क्या मालूम। ···पंचावन लाख की बताते हैं। ·· मैंने तो पैंतीस लाख सुना है। ···पागल! ···अरे वह किसी महाराजा की है, प्रभु को भेंट दिया है। ·· पूना वाले बाजी मार ले गये। ···और क्या! बम्बई वाले बेचारे टिकट ही छापते रहे! ···मगर एक बात बताओ भाई? ·· पूछो। ···भगवान पूना जाकर करेंगे क्या? ···हां, यही मैं भी सोच रहा हूं। ···और पूना क्या, इंगलैंड-अमरीका चले जायें, लेकिन एक बात पक्की है। ···क्या? उनके बिना बम्बई अभागी विधवा हो जायेगी।

सत्य की पहली किरण

गीता १५-वें अध्याय पर प्रभु का प्रवचन शुरू होने के पहले से हम लोग न जाने कितनी खबरें, कितनी अफवाहें रोज सुन रहे थे। न जाने

क्यों विश्वास ही नहीं होता था कि प्रभु बम्बई छोड़कर पूना चले जाएंगे। यों तो पूना कोई बम्बई से खास दूर नहीं है, किन्तु फिर भी पूना पूना में है, बम्बई में तो नहीं है कि हम सब खुश होते कि चलो प्रभु निकट ही हैं। लेकिन हमारे सोचने, न सोचने से क्या होता है। गीता प्रवचन के दौरान घोषणा कर दी गयी कि भगवान २१ मार्च को दोपहर डेढ़ बजे बम्बई से पूना के लिए प्रस्थान करेंगे। खबर सुनते ही दिल डूब गया। लगा कि जैसे डाल पर से किसी ने फूल को पूरी तरह खिलने के पहले ही नोंच लिया। लगा कि जैसे सजी-धजी खड़ी बरात से दूल्हा एकाएक उठ कर चला गया। लगा कि जैसे आरती की थाल जब तक सजे सजे, कोई मंदिर की मूर्ति उठाकर ले भागा। हम लोग दिल मसोस कर रह गए। न जाने क्या बात थी कि इतनी पक्की खबर सुनकर अभी भी लगता था कि अंतिम क्षण तक भगवान अपना विचार बदल देंगे और पूना नहीं जाएंगे। लेकिन सत्य सत्य है और उसे हमारी आशाओं-प्रत्याशाओं से क्या लेना-देना है? और इस सत्य के हम पर उतरते ही हमने भी पूना चलने की तैयारी शुरू की।

सूत्र की नाव

सुनायी पड़ा था कि भगवान कार द्वारा पूना के लिए प्रस्थान करेंगे। यह भी खबर थी कि भगवान के पीछे कारों का एक लम्बा जुलूस भी पूना तक जायेगा। "रजनीश-प्रेम-परिवार" के सदस्य भला कैसे पीछे रहते। साधु योग रामचंद्र ने अपनी टेम्पो ले चलने का प्रस्ताव रक्खा। धड़ाधड़ मेंबर तैयार होने लगे। फोर-व्हीलर वाइकिंग थी। दस व्यक्ति आराम से बैठ सकते थे, लेकिन मेंबर ज्यादा थे। खंडाला घाट चढ़ पायेगी? किसी ने शंका उपस्थित की। साधु योग रामचन्द्र भी आश्वस्त न थे। अभी कुछ दिन पहले उनका भाई राजू आधे रास्ते से वापस लौट आया था। दरअसल रामचंद्र जी स्वयं रामायण भूल गए थे, वरना आश्वस्त न होने का कोई कारण न था, क्योंकि जिस शक्ति से हनुमान जी सागर लांघ गए थे, वही शक्ति जर्जर टेम्पो को खंडाला घाट पार करा देगी इसमें किसी प्रकार की कोई बाधा न थी। हमने टेम्पो ले जाने का पक्का फैसला कर लिया।

सूली ऊपर सेज पिया की

आखिर २१ मार्च आया। दिन—गुरुवार। सन्—१९७४। अंतर-राष्ट्रीय बोधि-ज्ञान दिवस। रजनीश भक्तों का पुनीत-पर्व। जगत के लिए आशाओं और हर्ष का दिन: हमें खुश होना

चाहिए, आज त्यौहार है। और हम अपने दिलों को बेताबी से टटोलते हैं, झिंझोड़ते हैं, लेकिन खुशी नाम की चीज का एक कतरा भी कहीं छूने में नहीं आता है। क्या हुआ ? कहां गयी सारी खुशी ? क्या हो गया है हमें ? दिलों में यह कैसी मुर्दनी छायी हुयी है ? अन्तिम दिन, अन्तिम दिन ···पूरा माहौल जैसे इस एक शब्द से गूंज रहा है। सुबह आठ बजे से छोटे-छोटे बच्चे, स्त्रियां, बड़े-बूढ़े सब प्रभु के निवास-स्थान की ओर दौड़े चले जा रहे हैं। ···अन्तिम दिन। अंतिम दर्शन। ···चुप ! भीतर कोई बड़े जोर से डांटता है। ···बम्बई में अंतिम-दिन कहो। कोई बड़े जोर से विलाप करने लगता है। 'नमो अरिहंताणं' की धुन हो रही है। दर्शनार्थियों की लम्बी पंक्ति नीचे लान तक खिंच गयी है। हाल में प्रभु अपनी चिरंतन प्रसन्न मुद्रा में मन्द-मन्द मुस्काते विराजमान हैं। संसार भले आकाश में चला जा रहा हो या पाताल में ·· वह अचलायमान है, अभय और अकम्प ! लोग फूट-फूट कर रो रहे हैं। नीचे उतर कर आने वाले हर जन के चेहरे पर एक ही प्रश्न लटक रहा है—अब, इसके बाद ?

अस्वीकृति में उठा हाथ

रजनीश-प्रेम-परिवार के सदस्यों ने एक षड्यन्त्र रचा था। षड्यन्त्र यह था कि हम लोग अपनी टेम्पो को लेकर पहले ही चल देंगे और वाशी-नाके की चुंगी-चौकी पर परमात्मा की गाड़ी रोकेंगे। ख्याल यह था कि शहर छोड़ने के पहले भगवान लाओत्से से ताओ-तेह-किंग का कम से कम एक सूत्र वसूल लिया जाये। भाग्य भी कुछ साथ देता जान पड़ रहा था, क्योंकि एक मित्र मोटर सायकल लेकर आने को कह गए थे। रातों रात साधु आलोक आनन्द ने "रजनीश-प्रेम-परिवार" का एक बैनर टेम्पो के लिए और "जय रजनीश" का एक झंडा बाइक के लिए तैयार किया। मोटर-सायकल पर दिनेश और राजा भारती रहेंगे ऐसा तय हुआ था। उनकी ड्यूटी यह थी कि वे प्रभु की गाड़ी के आगे थोड़ी दूर तक चलेंगे, मगर फिर बीच में ही उन्हें छोड़कर हमें सूचित और सावधान करने आ जाएंगे।

यह सब योजना बना कर हम दोपहर बारह बजे से टेम्पो की प्रतीक्षा करने लगे, लेकिन हम दृष्टा तो थे नहीं कि अदृश्य के हाथों को देखते, टेम्पो के दो टायर रास्ते में आते-आते गोल हो गए ! डेढ़ बजे तक जब टेम्पो के दर्शन नहीं हुए, लगभग सभी मित्र बेचैन होकर वुडलैंड चले गए।

मैं कहता आंखन देखी

पौने दो बजे टेम्पो आयी। यही वक्त प्रभु के निकलने का भी था। जैसे-तैसे सभी मित्रों का सामान टेम्पो में रक्खा और वुडलैंड आये। वुडलैंड के अहाते में आते ही जो समां देखा तो किंकर्तव्य विमूढ़-सा हो गया। पूरा अहाता कारों और व्यक्तियों से भरा हुआ था। अनेक कारों पर गेंदे के फूलों की मालायें लगी हुई थीं। पूरा माहौल किसी जश्न का सा था। वुडलैंड की गगनचुम्बी इमारत के सभी फ्लैटों से लोग नीचे झांक रहे थे। अनेक स्त्री-पुरुष फूट-फूट कर रो रहे थे। लगता था कि कोई त्यौहार है और फिर भी वातावरण बोझिल और गमगीन था।

—भगवान गाड़ी में बैठ चुके हैं, जल्दी दर्शन कर आओ। शायद भरत ने सूचना दी। मैं दौड़ता हुआ उस तरफ गया जहां एक बड़ी भीड़ इकट्ठी थी। प्रभु की केसरिया गाड़ी को लोग चारों ओर से घेर कर खड़े थे। गाड़ी को फूलों से इस कदर सजाया गया था कि जैसे शादी की बारात में दूल्हे की गाड़ी। मैं फिर एक क्षण को विस्मित हुआ। गाड़ी में दूल्हा ही था, इसमें कोई शक नहीं, लेकिन हवा में एहसास बारात के आने का नहीं, लड़की की बिदाई का था।

अचानक दिल में एक टीस सी उठी।

फ्लाइट आफ दी एलोन टू दी एलोन

एक एक करके सभी गाड़ियां प्रभु की गाड़ी के पीछे सड़क पर उतर गयीं। दिनेश और राजा मोटर सायकल लेकर तैयार खड़े थे। उन्हें प्रभु की गाड़ी के आगे जहां तक हो सके जाने को कह हम लोग अपनी टेंपो के पास आये। टेंपो की हालत देखकर आंखें फैल गयीं। तमाम मित्र उसमें घुसकर बैठ गये थे। गाड़ी में आने वाले मित्र जमीन पर खड़े एक दूसरे का मुंह देख रहे थे। किसी का साहस नहीं हो रहा था कि कोई किसी को उतरने को कहे। गाड़ी में बैठे मित्रों के भाव भीने चेहरों को देखकर हिम्मत होती भी किसकी ?

—इतना लोड लेकर गाड़ी...। साधु योग रामचन्द्र ने कांपते होठों से कहा।

आखिर वह कठोर काम मुझे ही करना पड़ा। (मैं इस लेख द्वारा पुनः उन मित्रों से हाथ जोड़कर क्षमा याचना करता हूं) बड़ी मुश्किलों से मित्र उतरे फिर भी संख्या अधिक ही रही। दस व्यक्तियों

की जगह में, ड्रायवर मिलाकर सत्रह व्यक्ति थे।

खरामा खरामा हमारी गाड़ी भी सड़क पर उतरी। लेकिन अब दूर-दूर तक न तो भगवान श्री की गाड़ी दिखती थी और न ही किसी अन्य मित्र की।

खड़खड़ाती हुई हमारी टेंपो एकाकी ही धर्मयात्रा पर चल पड़ी।

जिन खोजा तिन पाइयां

लगभग आठ बजे हमने पूना शहर में प्रवेश किया। अंधेरा फैल चुका था। पूछते-पूछते हम लोग कोरेगांव पार्क आये। कोरेगांव पार्क में आते ही फिर रास्ता आसान हो गया। पूना के मित्रों का प्रेम और परिश्रम प्रत्येक गली के मुहाने पर दृष्टिगोचर हो रहा था। खूब सजे हुए द्वार और उन पर मार्ग-निर्देश की सूचनाएं तथा गलियों में लगी झंडियों की तोरण, स्पष्ट बता देते थे कि इस तरफ से जाइये। बडे बड़े बैनरों पर प्रभु के पूना शुभागमन की सूचना थी। तैंतीस नंबर का बंगला जो प्रभु का निवास स्थान था उस पर रंग-बिरंगे बिजली के लटटुओं की रोशनी दूर से ही प्रेमी-पंतिगों को पास आने का निमंत्रण देती थी। मगर वहां पहुंचने पर लोगों ने बताया कि दर्शन और कीर्तन का कार्यक्रम सत्रह नंबर के बंगले में है और प्रभु वहां पहुंच चुके हैं। ड्रायवर जान ने बड़ी तेजी से गाड़ी घुमायी और कुछ ही क्षणों में हम सत्रह नंबर के अहाते में जा पहुंचे।

गाड़ी एक ओर खड़ी करके हम लोग धड़ाधड़ उतरे और हाथ-पैर धोकर प्रभु के चरण स्पर्श के लिए पंक्ति में जा खड़े हुए। प्रभु सबेरे वाली मुद्रा में ही मंद मंद मुस्काते बैठे थे। चरण स्पर्श करके जब हम हाल में चुपचाप आ खड़े हुए तो बम्बई वाला वातावरण यहां भी महसूस हुआ। वही, उत्सव और उदासी साथ-साथ। मन न जाने कैसा कैसा होने लगा। नौ बजे प्रभु उठ गये। उनके जाते ही माइक पर घोषणा की गयी कि रात दस बजे से दो बजे तक कीर्तन होगा।

हम लोग बाहर जाने की सोच ही रहे थे कि फिर लाउड स्पीकर पर घोषणा हुयी कि बाहर के मित्रों के लिए मकान के पिछवाड़े में नाश्ते-पानी का इन्तजाम है अतः वे वहां पहुंच जायें। हम लोग तो सदा से पिछवाड़े में ही रहते आये हैं, सो बिना किसी दिक्कत के पिछवाड़े में पहुंच गए! वहां पहुंचकर देखा कि पूना वाले अजीब लोग हैं और उनकी

भाषा समझ के बाहर है, क्योंकि जिसे वे नाश्ता कह रहे थे, वह पूरा भोजन था और सब कुछ बड़ा ही शानदार आयोजन था। खैर, पूना भाषा चाहे जो बोले उसका प्रेम पूर्ण आतिथ्य सबों के हृदय में अपने स्पष्ट चिन्ह अंकित कर गया।

गहरे पानी पैठ

रात, दस सवा दस के लगभग माइक पर सूचना प्रसारित हुयी कि कोई गायक, कोई कीर्तन मंडली नहीं आ सकी है, इसलिए अपनी इच्छा से प्रेमी जन स्वयं आगे बढ़कर गायें-बजायें। पता लगा है कि बम्बई से आयीं लगभग सभी गाड़िया वापस बम्बई चली गयीं हैं—लेकिन रजनीश कीर्तन-मंडली मौजूद है, पता नहीं किसने चिल्लाकर कहा। थोड़ी देर में आलोक, कृष्णादत्त, भरत, जयचंद भाई, स्वामी आनंदमूर्ति और नीरा आदि मंच पर जा बैठे। पूना के पांच छह मित्रों ने बड़े अच्छे कीर्तन और गीत गाये। उन्होंने रजनीश-कीर्तन मंडली को अपना पूरा सहयोग दिया। श्री पुगलिया जी, मां वंदना आदि पूना के अनेक प्रेमी बराबर दो बजे तक बैठे रहकर सबों को उत्साहित करते रहे।

ठीक दो बजे पुंगलिया जी ने दीप जलाया। प्रभु के एक विशाल-काय चित्र के आगे दिया रखकर आरती गायी जाने लगी। देखते देखते पूरा वातावरण किसी अलौकिक शक्ति से भर गया। एक अद्भुत सुगंध का ज्वार चारों ओर छा गया। लोग उन्मत हो नाचने, चीखने और चिल्लाने लगे। लगा कि जैसे प्रभु निकट आ खड़े हुए हों। नीरा भूमि पर लौटने और चिल्लाने लगी—केम रूठी गयो, केम रूठि गयो? वह बार बार हाथ बढ़ाकर न जाने किन अदृश्य चरणों को अपने अंक में समेटने का असफल प्रयत्न कर रही थी?

गीता-दर्शन

रात तीन बजे हम लोग टेंपो लेकर बम्बई के लिए चल पड़े। सुबह नौ बजे हम पहुंचे। दिन भर डटकर सोने के बाद अब शाम की उदासी में चुपचाप अकेले बैठा हूं। सोच रहा हूं प्रभु वहां क्या कर रहे होंगे? न जाने क्यों मैं बहुत दुखी हूं, लगता है कि मेरा सर्वस्व लुट गया है, लगता है कि जीवन एक बहुत बड़ा धोखा है, लगता है कि जिंदा रहना बहुत बड़ी बेशरमी है, और—और रात नौ बजे जयचंद भाई घर आकर एक सूचना देते हैं—अभी शाम एक मित्र ने पूना से आकर बताया है कि भगवान आज सुबह बंगले के बाहर निकल कर घूम रहे थे।

□ *साधु आनन्द ब्रह्मदत्त*

हे जीवन के दिव्य स्थपति !

जीवन की यह इमारत,
जिस आस्थामूलक नींव पर—
शताब्दियों पूर्व
खड़ी की गई थी;
हे मेरे दिव्य स्थपति !
वह आज—
अचानक हिल उठी है !
अनीश्वरवाद के
वर्तमान विषाक्त वायुमंडल में
अनपेक्षित,
अप्रत्याशित—
अनास्थाओं की झंझाएं
प्रबल हो उठी हैं।

पुनश्च,
जिजीविषा की हर ईंट
थरथरा उठी है।

पड़ गई है—
कुण्ठाओं की एक लम्बी दरार,
हर दीवार में आरपार !
रेंग रहे हैं—
छद्मवेषी भोग लिप्साओं के दीमक
इतस्ततः।

हे देव !
किंचित् विवक्षातुर यह मुख्य द्वार—
किसी मुमुक्षु की भांति
बाहें पसार प्रतीक्षा-रत है,
चिरप्रतीक्षित किसी—
आत्मोद्धारक अभ्यागत के लिए।
खुले पड़े हैं ये गवाक्ष
पथराई हुई मुमूर्षु आंखों-से,
मलयानिल के अन्तिम एक
नवजीवनप्रद झोंके की आशा में।
चतुर्दिक व्याप्त अन्धकार !
एक निःस्वन हाहाकार !!
हे युगद्रष्टा ! हे युगस्रष्टा !
तनिक तो करो इस ओर—
अपनी दिव्य दृष्टि;
क्या से क्या हो गई है—
तुम्हारी यह भव्य सृष्टि !
आत्मोपलब्धि की एक...
केवल एक ज्योति-किरण के लिए,
आज प्रत्येक कक्ष ललक रहा है;
श्रद्धा के पुनीत जल से
हृत्कक्ष बार-बार छलक रहा है।

हे दिव्य ! दिव्याति दिव्य !
हे भव्य ! भव्यातिभव्य !
हे सच्चिदानन्द स्वरूप !
सत्यं शिवं सुंदरम् के—
हे साकार रूप !
जीवन की इस भग्न इमारत का
पुनः करो एक बार,
जीर्णोद्धार !

शान्त ! शान्त !
लो सुनो—
दिशाएं कुछ कह रही हैं—
आस्था को तोड़ो मत ।
आत्मा से मुख मोड़ो मत ।

वह देखो—
खंडित सपनों की छत के,
अनगिन सूराखों से,
अतृप्त आकांक्षाओं के
उखड़े हुए फर्श से,
कोई आता जा रहा है ।

शनैः शनैः मधुऋतु-सा
चिर तृषित—
तन-मन के उपवन में
छाता जा रहा है ।

कोई दिव्यालोकपुंज—
तिमिरावरणों को भेद कर
आत्मा के भीतर—
अन्तर्मन के कण-कण में,
अणु-अणु में,
क्षण-क्षण, प्रतिक्षण
समाता जा रहा है ।

□ प्रा० भगवानदास जैन
अहमदाबाद

भगवान रजनीश दर्शन की अन्य पत्र-पत्रिकाएं

	प्रकाशन स्थल	वार्षिक मूल्य
१	आनंदिनी (हिन्दी-मासिक): C/o २६३, माडल ग्राम, लुधियाना	१८-००
२	योग दीप (मराठी पाक्षिक): C/o जीवन जागृति केन्द्र, १०१, टिम्बर मार्केट, पूना–	१०-००
३	SANNYAS (English Bi-Monthly) C/o Selprint, A. Z., Industrial Area, Fergusson Road, Lower Parel, BOMBAY : 13	१८-००
४	"रजनीश-पत्रिका" (गुजराती मासिक) जीवन-जागृति-केन्द्र, भवानी चेम्बर्स, आश्रम रोड, अहमदाबाद–९	१०-००
५	"रजनीश वाणी" (पाक्षिक हिन्दी) ब्रह्मदेव भवन, पुरन्दरपुर, पटना–१ (बिहार)	७-००

साहित्य प्राप्ति हेतु संपर्क स्थल :

(१) रजनीश पब्लिकेशंस प्रा. लि., द्वारा : सेलप्रिन्ट, ए टु जेड इंडस्ट्रियल स्टेट, लोअर परेल, फर्गुसन रोड, बम्बई–१३

(२) ईश्वर-समर्पण, जीवन जागृति केन्द्र, ३१, इजरायल मोहल्ला, भगवान भुवन, मस्जिद बंदर रोड, बम्बई ९ : फोन : ३२७००१

(३) स्वामी सत्य बोधि सत्व, जीवन जागृति केन्द्र, भवानी चेम्बर्स, आश्रम रोड, अहमदाबाद-९, फोन : ७६५७३

(४) स्वामी अमृत बोधि सत्व, जीवन जागृति केन्द्र, १०१, टिम्बर मार्केट, पूना-१, फोन : २४१४८

(५) स्वामी आनन्द गौतम, जीवन जागृति केन्द्र, ४१६, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर-१

(६) अरविन्द कुमार, जीवन जागृति केन्द्र, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर फोन : २९५७

(७) स्वामी दयाल भारती, जीवन जागृति केन्द्र, कबूला पुल, सागर

(८) स्वामी निकलंक भारती, विजय गृह निर्माण सामग्री भंडार, गाडरवारा

(९) मोतीलाल बनारसीदास, बुक-सेलर्स एवं पब्लिशर्स, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-७

(१०) मोतीलाल बनारसीदास, अशोक राज पथ, पटना-४

(११) चंद्रकांत न० पटेल, आसोपालव, अपोजिट : बैंक आफ इंडिया, रावपुरा, बड़ौदा (गुज०)

★

रजनीश-प्रेम-परिवार

भगवान श्री रजनीश के प्रेमी मित्र दूर-दूर तक भगवान की प्रेम रश्मियों को बिखेर सकें इस हेतु—संन्यासी मित्रों, साधकों और जिज्ञासुओं ने

'रजनीश - प्रेम - परिवार'

की स्थापना बम्बई में फरवरी ७४ में की है।

○ *इस प्रेम-परिवार की गतिविधियां हैं :*

(१) सदस्यता शुल्क : मात्र—प्रेम, और प्रेम . और प्रेम।

(२) ध्यान पर्यटन : प्रत्येक माह के प्रथम रविवार को।

(३) भगवान साहित्य की लायब्रेरी : बम्बई महानगरी और देश के कोने-कोने में इस सत्कार्य हेतु सक्रिय कार्य करना।

(४) टेप प्रवचन : नियत स्थानों पर नियत समय भगवान की अनन्त आयामी वाणी सुनना।

(५) भजन-संकीर्तन एवं प्रभु-कृपा-चिकित्सा : निर्दिष्ट स्थलों पर प्रेम-रस में बिभोर होकर प्रभु-कृपा-चिकित्सा करना।

अन्य सभी प्रेम पूर्ण जानकारी के लिए सम्पर्क करें :

साधु आनन्द ब्रम्हदत्त
ओल्ड गांजावाला बिल्डिग,
१२।३४६ बेलासिस ब्रिज,
तारदेव, बम्बई–३४